सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं
आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 43, अंक : 6
सितम्बर – 2010

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।।

(गीता 7/3)

प्रयत्नशील हजारों पुरुषों में से कोई एक पुरुष ही योग की सिद्धि (यथार्थ मार्ग) को प्राप्त किया करता है और उस यथार्थगामी हजारों सिद्धों में से कोई एक ही मेरे तत्व को जाना करता है।

◆ ◆ ◆

तावन्निशीथवेताला वल्गन्ति हृदि वासनाः।
एकतत्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।।

(योगवासिष्ठ)

जब तक एक तत्व के दृढ़ अभ्यास से मन को पूर्ण रूप से जीत नहीं लिया जाता तब तक अर्द्धरात्रि में नृत्य करने वाले वेतालों के समान वासनाऐं हृदय में नृत्य करती रहती है।

◆ ◆ ◆

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति।।

(कूर्मपुराण)

योगरूप अग्नि शीघ्र निखिल पापपञ्जरपुंज को दग्ध कर देता है। उस पाप के दग्ध होने से प्रतिबन्ध रहित ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से निर्वाणसंज्ञक मोक्ष प्राप्त होता है।

◆ ◆ ◆

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये।।

(भगवान शंकर)

कोई मनुष्य चाहे जितना ज्ञानी, विरक्त, धर्मिष्ठ और जितेन्द्रिय क्यों न हो पर वह बिना योग के मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थः- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 43 अंक : 6

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हिताकारिणे।।

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्म को नमस्कार है। सृष्टि करने वाले तथा सभी अर्थों के ज्ञाता स्वयम्भु! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति-स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

सितम्बर, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख** – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराजा	3
2.	**सम्पादकीय**	8
3.	**यज्ञ निमित्त कर्म** – अनूपराय	11
4.	**मानुष जनम अनमोल रे** – रामेश्वर खण्डेलवाल	13
5.	**सद्गुरु के सानिध्य में पालब्रण्टन** – डा. विजय सिंह	17
6.	**पूर्णावतार की सोलह कलायें क्या हैं?** – डा. जे. पी. शर्मा	20
7.	**मैं शरणागत हूँ** – राजेश कुमार सिंह	24
8.	**श्रीगीतामृत पदावली** – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	26
9.	**सिद्धयोग के अनुवर्ती संत** – दर्शनानन्द	29
10.	**श्री सिद्धगुरु करे सो होय** – अवनीश भटनागर	33
11.	**दिशाहीन नारियों का उद्धार** – श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

प्राणायाम एवम् उसकी साधना-विधि

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमारे आचार्यों ने अपने ऋषि ग्रन्थों में प्राणायाम की विविध विधियों का वर्णन किया है, जिन्हें जानकर मनुष्य प्राणायाम को विधि पूर्वक करता हुआ पूर्ण लाभ उठा सकता है। इस विषय में एक बात परमावश्यक है जिसका पालन प्रत्येक योगी साधक को करना चाहिए।

प्राणायाम करने वाले साधक को चाहिए कि वह प्राणायाम आरम्भ करने से पूर्व योगासनों का पूरी तरह अभ्यास कर ले। योगासन जहाँ शरीर की आरोग्यता को बढ़ाते हैं वहाँ वे प्राणायाम की साधना में भी सहायक होते हैं।

अष्टाङ्गयोग में प्राणायाम से पूर्व आसन का निर्देश किया गया है। आसन ही एक ऐसा साधन है जिसके अभ्यास से मनुष्य प्राणायाम का पूरा लाभ उठा सकता है। आसनों के अभ्यासी मनुष्य को आसन-सिद्धि के लिए प्रयत्न करते ही रहना चाहिए। जब तक आसन-सिद्धि पूरी तरह सिद्ध नहीं हो जाता तब तक प्राणायाम की साधना में अन्तरायों की सम्भावना बनी रहती है। भगवान् पतंजलिदेव ने आदेश दिया है कि आसन-सिद्धि सर्वव्यापी अनन्त ब्रह्म में मन लगाने से हुआ करती है। यथा-

प्रयत्नशैथिल्यादनन्त समापत्तिभ्याम्।

ज्यों-ज्यों साधक का मन भगवान अनन्त में लय होता जायेगा, त्यों-त्यों आसन सिद्धि होती चली जायेगी और उसका परिणाम यह निकलेगा कि योगी के अन्दर द्वन्द-सहन की योग्यता पूर्णरूपेण आ जायेगी। यथा-

ततो द्वन्द्वानभिघातः।

शीतोष्णादिभिर्द्वन्दैरासन जयान्नाभिभूयते।

आसन जय हो जाने के बाद योगी सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि के आघात से प्रभावित नहीं होता, तभी वह प्राणायाम का अधिकारी बन पाता है। इसीलिए भगवान पतंजलिदेव ने प्राणायाम से पूर्व आसन सिद्धि का स्पष्ट शब्दों में निर्देश किया है। देखिये योग-दर्शन पाद का उनंचालीसवाँ सूत्र-

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति-विच्छेदः प्राणायामः।

सत्यासनजये बाह्यस्य वायोराचमनं सतुश्वासः, कोष्ठ्यस्य वायोर्निःसारणं

प्रश्वास:तयोर्गतिविच्छेद उभयाभाव: प्राणायाम:।

–व्यासभाष्य 2/49

आसन सिद्ध हो जाने के बाद श्वास–प्रश्वास की गति–विच्छेद को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम को बतलाते हुए महर्षि पतंजलिदेव जी कहते हैं–

स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभि: परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म:।

इस सूत्र पर व्यास भाष्य–

यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभाव: स बाह्य:। यत्र श्वासपूर्वको गत्यभाव: स आभ्यन्तर:। तृतीय: स्तम्भवृत्तिर्यत्रोभयाभाव: सकृत्प्रयत्नद्भवति। यथा तप्ते न्यस्तमुपले जलं सर्वत: सङ्कोचमापद्यते तथा द्वयोर्युपद्गत्यभाव इति। त्रयोऽप्येते देशेन परिदृष्टा इयानस्य विषयो देश इति। कालेन परिदृष्टा: क्षणानामियत्तावधारणेनावच्छिन्नाइत्यर्थ: संख्याभि: परिदृष्टा एतावद्भि: श्वासप्रश्वासै: प्रथम उद्घातस्तद्वनिगृहीतस्यैतावद्भिद्वितीय उद्घात एवं तृतीय:। एवं मृदुरेवं मध्य एव तीव्र इति संख्यापरिदृष्टा:। स खल्वयमेवमभ्यस्तो दीर्घसूक्ष्म:।

अर्थात् यह प्राणायाम बाह्यान्तर स्तम्भ वृत्ति भेद से तीन प्रकार का होता है। बाह्यवृत्ति–नासिकारन्ध्र द्वारा जो प्राण बाहर निकाला जाता है, उसकी स्वाभाविक गति का विच्छेद करके शनै: शनै: बाहर, निकालना रेचक प्राणायाम कहलाता है, इसी प्राणायाम का नाम बाह्यवृत्ति है।

आभ्यांतर वृत्ति– जो श्वांस बाहर आकाश मण्डल से खींचकर अन्दर ले जाया जाता है उसकी स्वाभाविक गति का विच्छेद कर देने से उसे पूरक एवं आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम कहते हैं।

स्तम्भ वृत्ति– बाहर की वायु को अन्तर कोष्ठ में ले जा करके उसकी स्वाभाविक गति का विच्छेद कर देना एवं उसे अन्दर रोके रखना कुम्भक या स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम कहलाता है। ये तीनों प्रकार के प्राणायाम देश, काल और संख्या के द्वारा बढ़ाये हुए दीर्घ एवं सूक्ष्म हो जाया करते हैं अर्थात् इनकी गति बहुत लम्बी और अत्यन्त सूक्ष्म हो जाया करती है। ये तीनों प्राणायाम देश, काल और संख्या के द्वारा तीन–तीन प्रकार के होते हैं।

प्रथम देश परिदृष्ट रेचक प्राणायाम

जिस समय साधक प्राणायाम का अभ्यास करता है, उस समय वह नासिकारन्ध्र से निकली हुई वायु को गौर के साथ देखता रहे कि वह कहाँ तक लम्बी जाती है। यदि पहले–पहल साधक अपने स्वाभाविक श्वांस को देखे कि वह कितनी दूर तक गति करता है तो वह अनुभव करेगा कि उसका साधारण श्वांस नासिकाग्र भाग तक ही पहुँच रहा है। ज्यों–ज्यों उसका अभ्यास बढ़ता चला जायेगा त्यों–त्यों उसके श्वांस की गति भी लम्बी होती चली

जायेगी।

यदि साधक यह जानना चाहे कि मेरे रेचक प्राणायाम की गति कितनी लम्बी हो गई है, तो वह अभ्यास के प्रथम दिन नासिकारन्ध्र के सामने धुनी हुई रुई रखे तो वह श्वांस की रेचन क्रिया से हिल जायेगी। दूसरे दिन जब अपने अभ्यास को और ऊँचा उठायेगा, तो उससे आगे रखी हुई रुई हिलने लगेगी। रेचक प्राणायाम की गति जब तक बारह अँगुल लम्बी न हो जाय, तब तक उसे हल्का समझना चाहिए। जब बारह अँगुल पर रखी हुई रुई श्वांस की रेचक क्रिया से हिलने लग जाय, तो समझना चाहिए कि योगी का रेचक प्राणायाम दीर्घ–सूक्ष्म अर्थात् लम्बा एवं हल्का बन गया है। यह रेचक प्राणायाम की देश–परिदृष्टता हुई।

आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम की देशपरिदृष्टता

जिस समय साधक रेचक प्राणायाम के बाद पूरक प्राणायाम करना आरम्भ करता है तो वह देखता है कि भीतर जाने वाले प्राण की गति कहाँ तक होती है। योगी को अपने अभ्यास काल में श्वांस के स्पर्श का ज्ञान स्वाभाविक होता रहता है। यह ज्ञान हर मनुष्य को स्वाभाविक होते रहना चाहिए, किंतु हर व्यक्ति इस ओर ध्यान नही देता। अतः वह समझ नहीं पाता है कि उसके श्वांस प्रश्वास की गति शरीर में कहाँ तक पहुँच रही है। योगी साधक जब अपने श्वांस–प्रश्वास की गति को देखने लगता है तो उसे अपने साधारण श्वास–प्रश्वास की गति हृदय तक जाती मालूम पड़ेगी। ज्यों–ज्यों वह पूरक प्राणायाम को बढ़ायेगा, त्यों–त्यों श्वांस की गति को मूलाधार तक जाता देखेगा। यही आभ्यन्तर प्राणायाम की देशपरिदृष्टता है।

स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की देशपरिदृष्टता

जिस समय योगी अपने स्तम्भवृत्ति प्राणायाम अर्थात् कुम्भक को बढ़ाता है तो उस समय श्वांस की गति का अवरोध हो जाने से रुके हुए प्राण का फैलाव देखता है, तो उसको अनुभव होता है कि उसका प्राण नाभिचक्र तक रुका हुआ है। प्रथमाभ्यास में वही प्राण हृदय तक रुका हुआ होता है। इस अभ्यास से योगी जान लेता है कि उसका कुम्भक कहाँ तक और कितना है। यही स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की देशपरिदृष्टता है।

काल परिदृष्टता

काल परिदृष्टता का अर्थ है– समय की अवधि तक प्राण की गति को समझना। जैसे साधक ने अपने प्राण का रेचन आरम्भ किया और वह घड़ी में देखता रहे कि रेचन कितने मिनट और कितने सेकेण्ड हुआ है, उसके बाद पूरक कितने अधिक समय तक किया गया है और कुम्भक कितने समय तक किया गया है। इस प्रकार के ज्ञान को काल–परिदृष्टता कहते हैं।

संख्या परिदृष्टता

योगी जिस समय अपना अभ्यास प्रारम्भ करे वह मात्राओं को गिनता रहे। 10 मात्रा से रेचक किया है तो 15 मात्राओं से पूरक करे और 30 मात्राओं से कुम्भक करे। इस प्रकार

अभ्यास की उत्कृष्टता के साथ ज्यों–ज्यों प्राण की गति बढ़ती जायेगी, त्यों–त्यों संख्याएँ भी बढ़ती जायेंगी, इसी का नाम संख्यापरिदृष्टता है।

इसी अभ्यास के क्रम से योगी अपने प्राणायाम को बढ़ाता चला जाये। हमारे योगाचार्यों ने प्राणवायु के पाँच भेद बतलाये हैं और वे पाँचों प्राण शरीर के भिन्न–भिन्न स्थानों में रहा करते हैं। यथा–

हृदि प्राणो गुदेऽपान, समानो नाभिमण्डले।

उदानः कण्ठदेशेष, व्यानः सर्व शरीरगः।।

हृदय में प्राण का निवास रहता है। गुदादेश में अपानवायु का, नाभिमण्डल में समानवायु का, कण्ठदेश में उदानवायु का और समस्त शरीर में व्यानवायु का निवास रहता है।

जिस समय योगी पूरक प्राणायाम करता है तो प्राण मूलाधार तक जाकर अपान में मिल जाता है और जिस समय योगी रेचक करता है तो अपान–समान के साथ मिलता हुआ प्राण में मिल जाता है। प्राणापान गतिरोधन करने से ही प्राणायाम कहलाता है। जगदात्मा श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता के चौथे अध्याय में अपने मुखारविन्द से कहा है–

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथापरे।

प्राणापानगती रुद्ध्वा, प्राणायाम परायणाः।।

योगी लोग अपान के अन्दर प्राण का हवन करते हैं और अपान का प्राण के अन्दर हवन करते हैं। इस प्रकार वे लोग प्राणायामपरायण रहा करते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि ने प्राणायाम की परिभाषा इस प्रकार लिखी है–

प्राणापान समोयोगः, प्राणायाम इतीरितः।

प्राणायाम इति प्रोक्तो, रेचक पूरक कुम्भकैः।।

प्राणापान संयोग को ही प्राणायाम कहा गया है। प्राणायाम में रेचक, पूरक, कुम्भक ये तीन–तीन मात्रायें हैं, जिस प्रकार अकार, मकार, उकार ये तीन मात्रायें मिलकर प्रणव ओंकार बन जाता है। प्राणायाम प्रणवमय है। याज्ञवल्क्य महाराज कहते हैं–

वर्ण त्रयात्मका ह्येते, रेचक पूरक कुम्भकाः।

स एव प्रणवः प्रोक्त, प्राणायामश्च तन्मयः।।

रेचक, पूरक और कुम्भक ये तीनों वर्ण रूप हैं अर्थात् तीनों में तीन–तीन वर्ण आते हैं, इसलिए यह प्राणायाम प्रणवरूप है। प्राणायाम करने वाले को प्रणव का ही प्रकाश होता है। प्राणायाम के अभ्यासी साधकों को चाहिए कि वे विधि–विधानपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करें।

यह शास्त्रीय सिद्धांत सदा ध्यान में रखना चाहिए कि –

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः।

दीर्घकालसेवितो निरन्तरासेवितस्तपसा ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया च संपादितः सत्कारवान् दृढ़भूमिर्भति, व्युत्थानसंस्कारेण द्रागित्येव अनभिभूतविषय इत्यर्थः।

चाहे किसी प्रकार का अभ्यास क्यों न हो, उसमें नियमानुवर्तिता का पालन जरूरी है। लम्बे समय तक किया हुआ, लगातार किया हुआ और विश्वासपूर्वक किया हुआ अभ्यास शीघ्र फलदायी होता है।

प्राणायाम का अभ्यासी यदि धैर्य को छोड़ कर शीघ्र फल की कामना करता है तो वह उसके उत्तम फल को नहीं पा सकता। उत्तम फल की प्राप्ति के लिए कर्मठता एवं धैर्य की आवश्यकता रहती है। जो लोग फल के लिप्सु बने रहते हैं वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाते। साधक को चाहिए कि वह कर्तव्यपरायण बना रहे और फल की इच्छा छोड़ दे।

भगवान श्रीकृष्ण का आदेश है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते संगोस्त्वकर्मणि।

कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है उसके फल में नहीं है। अत: कर्म फल के पीछे मत पड़े रहो और यह भी नहीं होना चाहिए कि कर्मफल की इच्छा न होने पर मनुष्य कर्म प्रवृत्ति को ही हटा दे। इसलिए साधक को चाहिए कि वह कर्मफल की इच्छा को छोड़ कर कर्तव्यपरायण बना रहे, इसी में ही कल्याण है।

▣ ▣ ▣

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषांजहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथा रसमहो नितरां पिब त्वम्।।

(श्रीमद्‌भागवत् मा. 4/80)

भगवद्‌भजन ही सबसे बड़ा धर्म है। निरन्तर उसी का आश्रय लिये रहे। अन्य सब प्रकार के लौकिक धर्मो से मुख मोड़ लें। सदा साधुओं की सेवा करें। भोगों की लालसा को पास न फटकने दें तथा जल्दी–से–जल्दी दूसरों के गुण–दोषों का विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान की कथाओं के रस का ही पान करें।

धारणा क्या और कैसे ?

आचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल

सामान्य व्यवहार में 'धारणा' शब्द दृढ़ निश्चय के अर्थ में प्रयुक्त होता है। विचार की परिपक्वता होने पर धारणा शब्द का प्रयोग होता है। अध्यात्म योग में, अष्टाङ्ग योग में पतंजलि देव जी ने अन्तरङ्ग योग के अन्तर्गत धारणा, ध्यान एवं समाधि का समावेश किया है। धारणा से ही मन की एकाग्रता प्रारम्भ होती है और अन्तर्जगत की यात्रा का आरम्भ होता है। मन जब तक बहिर्मुखी है तब तक वस्तु का ज्ञान नहीं होता है इसलिए आवश्यक होता है कि मन को एक बिन्दु पर, ध्येय पर एकाग्र किया जाये ताकि तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो। पतंजलि देव जी ने योग दर्शन में धारणा को स्पष्ट करते हुए एक सूत्र दिया है 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' अर्थात् अपने चित्त को स्थान विशेष पर बाँधना, एकाग्र करना धारणा है। व्यासदेव जी ने इस सूत्र की व्याख्या में भाष्य करते हुए लिखा है कि मूलाधार, नाभिचक्र हृतपुण्डरीक, आज्ञाचक्र आदि में से किसी को धारणा का आधार बनाया जा सकता है। धारणा का शरीर से बाहर प्रकृति की वस्तु जैसे चन्द्रमा ज्योति, तारे आदि को लक्ष्य करके अभ्यास किया जा सकता है। किंतु बाहर प्रकृति के चिंतन में मन के भटक जाने का भय रहता है। दूसरी बात यह भी है कि जिस बिन्दु को धारणा का केन्द्र बनाया जायेगा कालान्तर में उसी ध्येय में तद्रूपता प्राप्त कर समाधि लाभ किया जाता है। जिससे इष्ट में, या चेतन वस्तु में मन को एकाग्र करके शक्ति एकाग्रता व ज्ञान को प्राप्त किया जाता है। इसलिए योग में धारणा का केन्द्र शरीरस्थ केन्द्र ही माने गये हैं। कुछ लोग कहते हैं कि सन्तों ने सुमिरन को बहुत महत्व दिया है जो सरल प्रक्रिया है। ऐसे में धारणा जैसी कठिन प्रक्रिया को क्यों अपनाया जाये। ठीक है सुमिरन को ही स्मरण या ध्यान कहते हैं। सुमिरन में दो बातों का ख्याल रखा जाये। एक तो मन्त्रजाप या नाम जप दूसरा इसके साथ-साथ अर्थभावना भी आवश्यक है। पतजलिदेव जी ने 'तद्जपस्तदर्थभावनम्' कहकर यह बताया है कि जाप के साथ अर्थभावना भी होनी चाहिए। यदि आप पंचाक्षरी का जाप कर रहे हो किंतु साथ में शिव के स्वरूप का ध्यान नहीं कर रहे हो तो अभीष्ट लाभ नहीं होगा इसलिए सुमिरन में दोनों बातों पर ध्यान देना होगा। अन्यथा केवल जाप से लाभ नहीं होगा। कुछ लोग जाप का अभ्यास करते हैं तो जाप तो चलता रहता है यह एक प्रक्रिया रूप हो जाती है किंतु मन तो किसी और वस्तु का चिन्तन कर रहा होता है जिसका बाद में ज्ञान होता है। ऐसे में पूर्ण एकाग्रता नहीं रहने से जाप का यथार्थ फल नहीं मिलेगा। इस विषय में मुझे एक प्रसंग

याद आ रहा है। जो मेरे सद्गुरुदेव भगवान प्रायः सुनाया करते थे– एक बार आनंदकंद श्रीप्रभुजी सन्ध्या के समय अमृतसर में अपने आसन पर विराजमान थे। थोड़ी देर में ओमप्रकाश नाम का उनका एक भक्त दर्शनों के लिए आया। श्री प्रभुजी ने ओमप्रकाश से पूछा –तुम ध्यान भजन करके आये हो? उसने उत्तर दिया– हाँ! महाराज जी मैं ध्यान अभ्यास से अभी उठकर आया हूँ। श्री प्रभुजी ने कहा तुम ध्यान कहाँ कर रहे थे? तुम तो नौकर से लड़ रहे थे। ओमप्रकाश ने कहा नहीं महाराज जी मैं तो भजन में बैठकर आया हूँ। किंतु थोड़ी देर सोचने के बाद उसे ध्यान आया कि ध्यान अभ्यास के समय उसका मन क्षुब्ध था और वह नौकर के प्रति आक्रोश में था। क्योंकि उसके नौकर ने दिन में कुछ गलती कर दी थी जिससे उसे काफी नुकसान हुआ था। ध्यान के समय भी उसके मन में उसी बात का चिन्तन चल रहा था। जिसको अन्तर्यामी प्रभु ने जान लिया था। कहने का तात्पर्य यह है कि जाप व ध्यान के समय मन पूर्णतया एकाग्र रहना चाहिए तभी उस चिन्तन का लाभ है।

इसलिए नाम सुमिरन के साथ–साथ ध्यान भी चलना चाहिए यही धारणा में होता है। धारणा या सुमिरन का अभ्यास लम्बे समय तक करना चाहिए।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ भूमि।।

अर्थात् धारणा का अभ्यास दीर्घकाल तक कई महीनों तक निरनतरतापूर्वक तथा सत्कार अर्थात् श्रद्धा पूर्वक होना चाहिए तभी अभ्यास परिणाम देता है। सुमिरन भी एक विषयक होना चाहिए। धारणा में सफलता तभी मिल सकती है जब साधक यम–नियम का पालन करता हो, आसन और प्राणायाम करके शरीर से तमोगुण और रजोगुण क्षीण हो चुका हो, सतोगुण का उदय हो रहा हो तभी धारणा में दृढ़ता आती है।

सुमिरन के ही रूप को व्यासदेव जी महाराज ने स्पष्ट करते हुए लिखा है–

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्त्या, परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् साधक पहले कुछ घण्टे तक स्वाध्याय करे पश्चात् योग ध्यान में बैठ जाये। योग ध्यान से उपराम होने पर पुनः स्वाध्याय करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योग के सम्पुट से परमात्मा का दर्शन होता है। योग ध्यान के लिए साधक को चक्षु: आदि इन्द्रियों के द्वार को बन्द करना होता है जबकि स्वाध्याय में ऐसा करना आवश्यक नहीं है। स्वाध्याय से इष्टदेव का दर्शन होता है ऐसा महर्षि पतंजलि जी कहते हैं। '**स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग:**' स्वाध्याय से इष्टदेव के दर्शन होते हैं। मन्त्रजाप करने से पुण्य के प्रभाव से मन में प्रकाश का उदय हो जाता है और इस प्रकाश में इष्टदेव के दर्शन होने लगते हैं।

धारणा (Presumption) को योग दर्शन में समाधि प्राप्ति के मुख्य उपाय के रूप में माना है। धारणा को हम कल्पना भी कह सकते हैं। '**स्वप्नज्ञानावलम्बनम् वा**' अर्थात् स्वप्नज्ञान के अवलम्ब से भी समाधि की प्राप्ति होती है ऐसा पतंजलि जी ने एक सूत्र दिया है।

'स्वप्नज्ञानावलम्बन' भी धारणा एवं कल्पना का रूप है। साधक धारणा के द्वारा अपने इष्टदेव का चिन्तन करना प्रारम्भ करता है। कोई शिव भक्त कल्पना करता है, भगवान शिव कैलास के उत्तुंग शिखर पर विराजमान हैं वे समाधिस्थ हैं। ऋषिगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। भगवति पार्वति वामाङ्क में विराजमान हैं इस प्रकार कल्पना करता हुआ भक्त शिवाराधना करता है यही धारणा का रूप है। निर्गुण उपासक ज्योति का ब्रह्म का अक्षर का ध्यान करता है। यही धारणा है प्रतिदिन इसका अभ्यास करते-करते धारणा में इष्ट का स्वरूप उत्तरोत्तर स्पष्ट होता चला जाता है और इष्ट देव प्रकाशमय रूप में दिखाई देते हैं। यह सब धारणा से होता है अंग्रेजी में भी एक कहावत है, As you think so you become अर्थात् तुम जैसा सोचते हो वैसा ही एक दिन बन जाते हो। यह सोचने की प्रक्रिया एक दो दिन के अभ्यास से परिणाम को नहीं देता किंतु लम्बे समय तक करना पड़ता है। धारणा को हम आभ्यन्तर त्राटक भी कह सकते हैं। इस प्रकार के त्राटक से स्वत: ही ज्योति प्रकट होती है। उसी ज्योति का फल पतंजलि जी ने एक सूत्र के द्वारा दिया है 'मूर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्' अर्थात् मूर्धज्योति में मन को एकाग्र करने से, संयम करने से सिद्ध दर्शन होते हैं। दत्तात्रय योगी के योग शास्त्र में पंचमहाभूतों में की गई धारणा के अद्भुत परिणाम का संकेत मिलता है। धारणा से पंच महाभूतों पर योगी का अधिकार होने लगता है। परिणाम स्वरूप योगी की सर्वत्र अप्रतिहत गति होती है। वीतरागी पुरुषों के ध्यान से भी समाधि धारणा ही लम्बे समय तक करने से ध्यान में बदल जाता है और फिर ध्यान से समाधि में प्राप्ति हो जाती है। पतंजलि देव जी महाराज ने एक सूत्र दिया है **'वीतराग विषयं वा चित्तम्'** अर्थात् वीतरागी पुरुषों के ध्यान करने से भी समाधि प्राप्त होती है। वीतरागी पुरुष वे होते हैं जो अविद्यादि क्लेशों को काट चुके हैं। ईश्वर तो सदा से ही राग रहित है उनमें अविद्याजन्य राग कभी होता ही नहीं। अन्य कैवल्य प्राप्त योगी अविद्यादि क्लेशों को काट चुके हैं। ईश्वर और कैवल्य प्राप्त योगी में इतना ही अन्तर है कि कैवल्य प्राप्त योगी क्लेशों को काटकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं किंतु ईश्वर का क्लेशों से कभी न सम्बन्ध था और न रहेगा। कैवल्य प्राप्त योगी को ईश्वर तो नहीं कह सकते किंतु ईश्वर (तुल्य) सदृश होते हैं। पुरुष नाम आत्मा का है। सभी पुरुष हैं किंतु ईश्वर पुरुषोत्तम कहे जाते हैं। पुरी में जो शयन करता है, अन्त: करण में जो वास करता है उसी का नाम पुरुष है। इस प्रकार मुक्त पुरुषों में धारणा व ध्यान करने से समाधि होती है। धारणा, ध्यान व समाधि एक विषयक होने पर संयम कहलाता है और संयम सिद्ध होने पर ही सकल सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है। धारणा को योग शास्त्र में कहीं-कहीं पर समाधि के अर्थ में भी प्रयुक्त किया है।

▣▣▣

यज्ञ निमित्त कर्म

अनूपराय, आजमगढ़

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन के माध्यम से उस व्यक्ति को मिथ्याचारी कहा, जो अपनी कर्मेन्द्रियों को तो रोक लेता है, पर मन ही मन भोगों का चिन्तन करता रहता है। यह मिथ्याचार क्रमशः अनाचार को जन्म देता है, क्योंकि मन के द्वारा भोगों का चिन्तन करते रहने से एक दिन कर्मेन्द्रियों पर खड़ा किया गया बाँध ढह जायेगा और व्यक्ति उस बाढ़ में डूबकर नाश को प्राप्त होगा। इसी को लक्ष्य कर नीचे के श्लोक में स्पष्ट किया गया है:-

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।। 3-7।

अर्थात्, किन्तु हे अर्जुन, जो (चक्षु-कर्णादि) ज्ञानेन्द्रियों को मन के द्वारा संयत कर के अनासक्त भाव से कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्मयोग का अनुष्ठान करता है, वह श्रेष्ठ है।

श्रेष्ठ व्यक्ति आँख-कान-नाक आदि ज्ञानेन्द्रियों को मन के द्वारा नियन्त्रित करता है और मन में कर्म या उसके फल के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति न रखते हुए कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्मयोग का अनुष्ठान करता है। इस प्रकार कर्मयोगी अपनी ज्ञानेन्द्रियों को मन के वश में रखता है; कर्म या कर्म के फल के प्रति अनासक्त रहता है तथा वह सतत् कर्म में लगा रहता है और आलसी भाव नहीं आने देता है। श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन को सचेत करते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन!, तू भी अपना नियत कर्म कर, अकर्मण्य मत बन। जैसा नीचे के श्लोक से स्पष्ट है:-

नियतं कुरु कर्म त्वं ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर याऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।

अर्थात् तू (शास्त्रों द्वारा) निर्दिष्ट (नियत) कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। फिर कर्म न करने से तेरी शरीर-रक्षा भी तो नहीं होगी।

'नियत, की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य अपने गीताभाष्य में लिखते हैं- 'नित्य, यो यस्मिन कर्माणि अधिकृतः फलाय च अश्रुतं तद् नियतम्'- अर्थात् जो कर्म श्रुति के अनुसार कोई फल नहीं देता, ऐसे जिस कर्म का जो व्यक्ति अधिकारी है, उसके लिए वह नियत कर्म है। इसको नित्य कर्म भी कहा जाता है, जिसको करने से कोई फल नहीं मिलता, पर जिसको न करने से दोष होता है। ब्राह्मण के लिए नित्य कर्म शम-दम-तप और क्षत्रिय के लिए शौर्य व युद्ध से अपलायन, उसी प्रकार वैश्य के लिये कर्म कृषि, गौ रक्षा, वाणिज्य और शुद्र के लिए सेवा आदि। हमारे देश में चार वर्णो में मनुष्यों का विभाजन जन्म के आधार पर न होकर उनके

कर्मों और गुणों के द्वारा होता था किंतु वर्तमान में वर्णों का विभाजन जन्म के आधार पर है। नियत कर्म को गीता में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा गया है- यथा स्वधर्म, सहजकर्म, स्वकर्म, स्वभावजकर्म, स्वभाव नियत कर्म आदि।

श्रीकृष्ण भगवान, अर्जुन को नियत कर्म को यज्ञरूप में लेने का उपदेश देते हैं कि-

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।। 3-9।।

अर्थात् यज्ञ के लिए किये गये कर्मों के सिवाय अन्य कर्मों से इस संसार में व्यक्ति कर्मबन्धन से युक्त हो जाता है, अतः हे कौन्तेय, तू आसक्ति को छोड़कर यज्ञ के निमित्त कर्म कर। इससे यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि जो कर्म यज्ञ के लिए किये जाते हैं, उनसे मनुष्य को बन्धन नहीं लगता, पर वह जो दूसरे कर्म करता है, उनसे बन्धन लगता है। अतः उसे आसक्ति छोड़कर यज्ञ के निमित्त ही कर्म करने चाहिए। प्राचीन काल में यज्ञादि परम्परा थी, जिससे प्रकृति में सन्तुलन बना रहता था क्योंकि यज्ञ के कारण वर्षा का सन्तुलन बना रहता था। इसी परिपेक्ष्य में श्री कृष्ण भगवान अर्जुन से कहते हैं कि यज्ञार्थ कर्म करो। जो कर्म यज्ञ भावना से नहीं होगा। वही कर्म बन्धन कारक हो जायेगा।

▣ ▣ ▣

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

(गीता 12/16)

जो कभी (सांसारिक प्रिय वस्तु को प्राप्त कर) हर्षित होता है, न उसके नाश होने से द्वेष करता है, न नाश होने पर शोक करता है, न उसको पुनः पाने के लिए इच्छा करता है और जो सभी शुभाशुभ कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

विमर्श : अँधेरे में ही रोशनी के मिलने पर हर्ष, उसके बुझने में द्वेष, बुझ जाने पर चिन्ता और उसे फिर से जलाने की इच्छा होती है; यह शुभाशुभ अंधकार की अवस्था में ही। सूर्य के प्रखर प्रकाश में इनमें से कोई-सी बात नहीं रह जाती।

मानुष जनम अनमोल रे......

रामेश्वर खण्डेलवाल, गंगापुर सिटी

'बड़े भाग्य मानुष तन पावा', हम धन्य कि हमको परमात्मा ने मनुष्य बना कर यहाँ भेजा। इस मनुष्य शरीर को तो स्वर्ग के देवता भी तरसते हैं। क्योंकि इसी शरीर के द्वारा जीवन अपने जन्म–मृत्यु के चक्र से छूट सकता है, अपना कल्याण कर सकता है। शरीर रूपी नौका के द्वारा ये जीव भव सागर से तर सकता है। बाकी सब योनि केवल भोग योनि है। बार–बार जन्मना बार–बना मरना इन सब से छुटकारा दिलाने के लिए ही हमको ये मनुष्य का चोला मिला है। मनुष्य शरीर के द्वारा ही हम वो साधना कर सकते हैं जिससे हमको मोक्ष की प्राप्ति हो सके। इसी शरीर के द्वारा हम हमारे परमपिता से मिल सकते हैं। हम जिनके अंश हैं उन अंशों से मिल सकते हैं। न जाने कितने जन्मों से हम बिछुड़े हुए हैं, न जाने कितनी योनियों में रह चुके हैं। कभी कुत्ते बने कभी सुअर बने, तो कभी कीड़े–मकोड़ों की योनियों में हम रह चुके।

अब उस दयालु ने दया करके हमारा कल्याण करने की सोची और हमको ये मानव का चोला दे दिया जिससे हम अपना उद्धार कर सकें। लेकिन कितने मूर्ख हैं हम, कितने दुर्भाग्यशाली हैं कि हम अपना कल्याण नहीं कर सके। जीव इन्द्रियों से दोस्ती कर बैठा और उनके द्वारा सांसारिक विषय भोगों में आनन्द लेने लग गया। एक तो हमने मनुष्य बन कर जन्म लिया, दूसरा हमें राम–कृष्ण शिव की पावन स्थली भारत भूमि में जन्म हुआ। तीसरा सिद्धगुरु का सानिध्य मिला अच्छा परिवार मिला। इसके बाद भी हम अपना आत्मोद्धार नहीं कर सके तो हमारा जन्म लेना ही व्यर्थ है।

करके दया दयाल ने मानुष जन्म दिया।
बन्दा न करे भजन तो भगवान क्या करे।।

मनुष्य जन्मता है, बड़ा होता है, विषय भोग करता है, सन्तान उत्पन्न करता है, उनका पालन–पोषण करता है, धन–जमीन, जायदाद अन्य भोग्य सामग्री एकत्रित करता है। इन सबको प्राप्त करने में न्याय–अन्याय, पाप–पुण्य, उचित–अनुचित तौर–तरीके अपनाने लगा और अन्त में सब कुछ छोड़ कर पाप की गठरी बाँध कर चल देता है। सब यहीं छोड़ देता है केवल पाप की गठरी साथ ले जाता है। कोई विरला ही ऐसा होगा जो पुण्य की कमाई साथ लेकर जाता है उसी का मानव जन्म सफल होता है। कई बातों में मनुष्य पशु से भी नीचे होता है। पशु अपने भोगों को भोगता है, वो सन्तान भी पैदा करता है मगर संग्रह नहीं करता, दूसरों का गला नहीं घोंटता, उन्हें भविष्य की चिन्ता नहीं होती। पशुओं को ये योनि दण्ड स्वरूप

मिलती है क्योंकि उनके पूर्व के कर्म ऐसे नीच के थे। अब अगर मनुष्य भी ऐसे कर्म करेगा तो अगले जन्म में पशु बनना निश्चित है। भगवान ने मनुष्य को बुद्धि दी है कि उसका सदुपयोग करे, अच्छे–बुरे का निर्णय करे अपना कल्याण करे लेकिन मनुष्य ने उस बुद्धि को बुरे कर्मों की ओर मोड़ दिया। क्योंकि बुरे कर्मों में उसे आनन्द आने लगा। अपना पतन का मार्ग चुन लिया। सांसारिक भोग अनित्य है, अस्थिर है, क्षण–भगुर है। विषयों में हमें सुख की प्रतीति होती है जबकि उनमें सुख नहीं है।

जो सुख इन्द्रियों के संयोग से मिलता है भोग काल में वो अमृत के समान लगता है, जबकि परिणाम में वो दुःख देता है। भोगों में रोगों का दुःख छुपा हुआ है। हर सुख के पीछे दुःख छिपा हुआ है। संसार का प्रत्येक पदार्थ नश्वर है, इस नश्वर संसार में केवल धोखा है। जिसमें हमने अपने आपको इन विषय भोगों में इतना फँसा दिया कि हम हमारा असली उद्देश्य क्या है, ये भी भूल गये। क्यों मानव बना कर ईश्वर ने हमको यहाँ भेजा सब भूल गये।

ईश्वर ने हमको परिवार दिया उसकी जिम्मेदारी दी तो उसकी तो निभानी पड़ेगी, ये सब कार्य भी हमारे साथ ही रहेंगे। परिवार का लालन–पालन का भी हमारा धर्म है। उसको छोड़ना नहीं है। बल्कि पूरी ईमानदारी से निभाना है। लेकिन केवल धर्म समझ कर अपना कर्तव्य समझ कर। ऐसा सोचते हुए कि परमात्मा ने इनकी जिम्मेदारी मुझको दी है तो इनकी खुशी में ही अपनी खुशी मानते हुए इनकी सेवाभाव से अपना कर्म करना है। अपने आप को कर्ता मत समझो क्योंकि कर्ता तो केवल एक ही है और वो है ईश्वर जो हम सबका पिता है हमको उसने सेवा करने का दायित्व दिया है। कर्म योगी बनकर कर्म करो। आसक्ति पैदा मत करो, अहंकारी मत बनो मोह, ममता में मत फँसो केवल अपना कर्तव्य समझ कर कर्म करो। निःस्वार्थ भाव रखो लेन–देन का सौदा मत रखो। ये सोच कर बच्चे का पालन मत करो कि बुढ़ापे में ये हमारी सेवा करेगा। बिना कामना के कर्म करना ही कर्म योग कहलाता है। बिना आसक्ति के, बिना अहंकार के दूसरों की सेवा करो।

मनुष्य कितने जन्मों से सुख की खोज में दौड़ रहा है। कितने हमारे जन्म हो चुके। कितने जन्मों में हम राजा बने। कितने ही जन्मों में हमने अमीर बन कर भोग भोगे। लेकिन हम तृप्त नहीं हुए। भोगों में सुख ढूंढते हैं जबकि संसार के भोगों में सुख नहीं बल्कि परिणाम में दुःख भरे पड़े हैं, अशान्ति मिलती है रातों को नींद नहीं आती जितना संग्रह किया है उसकी सुरक्षा करनी है कहीं चोर या डकैत आ जाएँ, कहीं इनकम टैक्स वाले आ जाएं ये सब अशान्ति के कारण हैं। सारा सुख चैन समाप्त हो जाता है।

हर कोई सुख की खोज में घूमता है। लेकिन वो गलत राह चुनता है। वहाँ उसे सुख नहीं बल्कि दुःख का भण्डार मिलता है। अपना अमूल्य जीवन अपना अमूल्य समय यों ही बिता देता है। लेकिन उसको वास्तविक सुख नहीं मिलता बल्कि भोगों में इतना उलझ जाता

है कि अपने लिए अगले जन्म में नीच योनियों का चुनाव कर लेता है।

इस जगत को भगवान ने दुःखा लय– दुःखों का घर बतलाया है सभी लोग किसी न किसी अभाव का अनुभव करते हैं और अभाव ही दुःख का कारण है। ऐसी स्थिति में इस दुःख– मय जगत से नाता तोड़ कर उससे सुख पाने की आशा छोड़ कर किसी सिद्ध पुरुष या सिद्ध गुरु की शरण में जाकर शास्वत सुख प्राप्ति का उपाय ढूंढे। सिद्ध गुरु की कृपा से ही तुमको अथाह सुख का भण्डार, सुख का सागर हमारा विधाता जिनकी हम संतान हैं लेकिन विषय भोगों में हम अपने असली पिता को भूल कर मायावी संसार के लोगों से सम्बन्ध बना बैठे और दुःखी हो गये। ऐसे समय में सिद्ध गुरु ही हम को हमारी पहचान कराता है। हमको हमारे परमपिता से मिलने का मार्ग बताता है। और बताता है कि तू कौन है, तेरा असली स्वरूप क्या है। जब ये जानकारी हो जाती है तो दुःख तो अपने आप भाग जाता है। क्योंकि दुःख होता है अज्ञानता से और ज्ञान होते ही सुख का सागर लहराने लगता है। जैसे अन्धकार में एक छोटी सी रोशनी होते ही अन्धकार दूर भाग जाता है ऐसे ही हमारे जीवन का अन्धकार भी गुरु दूर कर देते हैं।

भगवान का भजन ध्यान करने वाला उनकी कृपा से परमानन्द एवं परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है। भगवान के भक्तों का आश्रय ग्रहण करके उनके वचनों के अनुसार चलने वाला व्यक्ति दुःखों से मुक्त होकर परम सुख को प्राप्त कर लेता है।

भगवान ने गीता में कहा है कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपने द्वारा अपना उद्धार करे या अपने द्वारा अपना पतन करे। आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपना मित्र है। जो राग–द्वेष, शोक–भय आदि होते हैं वो क्यों होते हैं अज्ञान से, अविद्या से। अज्ञान का नाश ज्ञान के द्वारा होता है और ज्ञान बताने वाला है सिद्ध गुरु। ज्ञानी पुरुष जीते जी मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। परम सुख के साधन जो हमें सिद्ध पुरुषों द्वारा सिद्ध गुरु के द्वारा बताये गये हैं। उन पर बिना विलम्ब किये हमें उनके बताये नक्शे कदम पर चलना है। उनको अपने जीवन में उतारना है। उनके निर्देशों की पालना करनी है। भगवत प्राप्ति का साधन कोई दुःसाध्य कार्य नहीं है। यदि हमारे अन्दर लग्न है परमात्मा प्राप्ति की लालसा है तो हम जरूर सफल होंगे।

यदि मानव जीवन को सफल बनाना है, सच्चे सुख की प्राप्ति करनी है। तो हमें वो साधन अपनाने होंगे। परमात्मा का भजन, उनका चिन्तन ध्यान उनका स्मरण करते रहना है। यदि कोई भगवत परायण होकर निष्काम भाव से भगवान की भक्ति करे तो उसे साक्षात् दर्शन देने के लिए परमात्मा को बाध्य होना ही पड़ेगा।

प्रिय पाठकगण, हमें इस बात का दृढ़ विश्वास करना है कि मनुष्य जीवन का परम कर्तव्य सच्चिदानन्दघन आनन्दकन्द परमात्मा की भक्ति करना है। उसी में अपने जीवन की पूर्णता है। बाकी सब छलावा है जो हमको जन्म–मरण के चक्र में चक्कर लगाने को बाध्य

करता है। जितने भी सांसारिक सुख प्रतीत होते हैं जो वास्तव में है नहीं केवल ऐसा लगता है, उनसे दूर रहें और शाश्वत सुख जो परमात्मा के चरणों में है उसको ग्रहण करें। उनको प्राप्त करें।

मानुष जनम अनमोल रे माटी में ना घोल रे।
अबकी मिला है फिर ना मिलेगा– कभी नहीं, कभी नहीं कभी नहीं रे।।

▣ ▣ ▣

शोक संवेदना

सिद्धयोग परिवार के कई सदस्य पिछले माह पंच तत्व में विलीन हो गये हैं। यह दुःख का विषय है।

(1) 2 जुलाई 2010 को हरदोई निवासी ठा. पुतान सिंह की पत्नी का देहावसान हो गया है। कुछ महीने से रुग्ण चल रही थी। सिद्धयोग परिवार दुःखी परिवार को अपनी हार्दिक शोक संवदेना प्रकट करता है। प्रभु इन्हें अपने अभय चरणों में स्थान दें।

(2) दिल्ली निवासी यशपाल शर्मा की माँ सरोज का 12 जुलाई को निधन हो गया है। सिद्धयोग परिवार इस दुःख में दुःखी परिवार के सदस्यों के साथ दुःख की बेला में अपनी संवदेना प्रकट करता है। प्रभु दुःखी परिवार के सदस्यों को दुःख सहने की शक्ति दें।

(3) नागंलोई निवासी देवेन्द्र अग्रवाल का 21 जुलाई को शरीर छूट गया है। कई वर्षो से उनका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था। गुर्दे की बीमारी से पीड़ित थे। उनकी धर्मपत्नी सरला व बच्चे राजीव आदि के इस दुःख की बेला में सिद्धयोग परिवार अपनी संवदेना भेज रहा है। प्रभु दुःख सहने की शक्ति दें और प्रभु के चरणों में निष्ठा बनी रहे।

प्रभु इन सभी गुरु भक्तों को अपने चरणों में स्थान दें। इसी प्रार्थना के साथ आपका –

सम्पादक
'सिद्धयोग'
श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा

सद्गुरु के सानिध्य में पालब्रण्टन

सार–संक्षेपक, डा. विजय सिंह

सुदूर भारत के दक्षिण में अरूणाचल पर पालब्रण्टन महर्षि रमण के दर्शनार्थ गया। प्रथम भेंट के समय महर्षि त्राटक भाव से समाविस्थ थे। उस दृश्य का मनोहारी वर्णन पालब्रण्टन के शब्दानुवाद में देखें – वे एकदम अचल होकर खिड़की में से बाहर की ओर ठीक उसी तरफ देख रहे थे जिस तरफ से हम लोग आये थे। उनकी देह अलौकिक निश्चलता की मूर्ति बनी थी। जरूर इन महात्मा में कोई विशेषता थी। जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है ठीक उसी प्रकार वे मेरे मन को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। उनके ऊपर मेरी दृष्टि जो एक बार पड़ी तो वहीं वह अड़ गयी और हटने का नाम न लेती थी। इस विचित्र आकर्षण का प्रभाव मेरे ऊपर इतना अधिक हुआ कि मेरे मन की बेकली दूर होने लगी। मुझे पता चलने लगा कि भीतर ही भीतर प्रशांतिमय दुर्निवार परिवर्तन होने लगा है। थोड़े ही समय में ही, अज्ञात रूप से, मुझे बोध होने लगा कि शांति का गम्भीर प्रवाह मेरे अंत:स्थल में पैठा जा रहा है। दो घण्टे तक इसी मनोदशा में बैठा रहा। शांति मेरी आत्मा को प्लावित करने लगी।

अन्य दिन, कुछ लोग महर्षि को घेरे हुए ध्यान मग्न बैठे थे। पालब्रण्टन भी आकर बैठ गया। उसे पुन: पूर्व दिन सा ही अनुभव होना शुरू हो गया। महर्षि के सानिध्य में बैठते ही एक अस्पष्ट शांति की लहर अन्त:स्थल में प्रवेश करने लगी। अंत में उसे ध्यानानुभूति तदिक अवस्था में हुआ। जिसका वर्णन पालब्रण्टन के भावानुवाद में पढ़ें– 'मुझे भान हुआ कि मैं पाँच वर्ष का एक छोटा बच्चा हूँ। पवित्र अरूणाचल पर घूम फिर कर ले जाने वाली एक घुमावदार पगडंडी पर मैं खड़ा हुआ हूँ। मैं महर्षि का हाथ थामें हुए था। वे मेरी बगल में अत्यन्त दीर्घकाय रूप में खड़े थे। वे मुझे आश्रम से दूर ले चले। रात सा अन्धेरा था। हम दोनों धीमी चाल से आगे बढ़ रहे थे। कुछ देर बाद चाँद–तारे उदय होकर धुंधली रोशनी बिखेरने लगे। चारों ओर बड़े भयानक शिलाखंड फैले हुए थे। पहाड़ का चढ़ाव खतरनाक था। हमारी चाल अत्यन्त मन्द थी। पत्थरों के बीच कहीं–कहीं पहाड़ी गुफायें तथा कुटियाँ दिखाई पड़ीं। उसमें निकल–निकल कर तपस्वी हमारी आव भगत करते थे। मुझे भास हुआ कि ये सभी योगी हैं। हम चलते रहे पर्वत की चोटि पर पहुँच कर रुक गये।

महर्षि मेरी ओर घूमकर सीधे मेरे चेहरे को ताकने लगे। मैं भी उत्सुकता के साथ उनकी ओर देखने लगा। मुझे प्रतीत होने लगा कि मेरे मन और हृदय में तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा है। एक अकथनीय शांति से मैं आवृत्त हो उठा। सहसा महर्षि की आज्ञा सुनाई पड़ी। पहाड़ के नीचे देखो? देखा तो क्या था? वहाँ पहाड़ के पाद तल में हमारे पश्चिमी भूभाग

फैले पड़े थे। असंख्य लोगों की भीड़ लगी थी। पुनः महर्षि की आवाज आयी– जब तुम फिर वहाँ लौट जाओगे, अब तुम जिस शांति का अनुभव कर रहे हो वह सदैव तुम्हारे साथ रहेगा और महर्षि ने एक रुपहली ज्योति शलाका मेरे हाथ में पकड़ा दिया।

इस अनूठे, आश्चर्यजनक अनुभूति का प्रभाव ध्यान से उठने के पश्चात् भी काफी देर तक बना रहा। लगता था कि जीवन की सारी कालिमा अब शून्य में विलीन हो गई है। पालब्रण्टन को ध्यान करते समय अथवा प्रकृतस्थ होकर आश्रम में कोई कार्य करते समय यह सदैव आभास होता रहता था कि चारों ओर एक रहस्यमय शक्ति का प्रभाव फैला हुआ है। जिसमें कृपामयता की अपूर्व पैठ है। गुरु के सानिध्य से अकथनीय आनन्द, प्रशांति का अनुभव मिलता है। एक सम्पूर्ण विश्वास अस्तित्व का अन्तस्तल में उमड़ता है। गुरु के सम्पर्क मात्र से शिष्य में आंतरंगिक परिवर्तन होता है। यह सब पालब्रण्टन को बार–बार अनुभव होने लगा था।

पालब्रण्टन को दिव्यानुभूति

महर्षि रमण का कथन है कि साधक अपने आत्मान्वेषण के प्रति जागरुक हो तो उसे अपने आप का कि, वह कौन है? अवश्य ही एक दिन पता लग जाता है। पालब्रण्टन को भी उन्होंने यही कहा था, कि एकाग्रता पूर्वक खोज करो कि तुम यथार्थतः कौन हो? स्वयं से बारम्बार प्रश्न करो ''मैं कौन हूँ''। सारे विचार और विमर्श के मूल का पता लगाओ। सजग होकर इस बात की प्रतीक्षा करो कि आत्मा क्यों, किस प्रकार, अपने तत्व को खोलकर बता देती है। ऐसा होने पर ही संकल्प–विकल्प का नाश होता है। यही समाधि है। संकल्प–विकल्प रहित मनोदशा में ही समाधि सम्भव है।

सतत् अभ्यासरत रहकर पालब्रण्टन को अचानक गुरु कृपा से एक दिन अपने आत्मतत्व का साक्षात्कार हो गया। पालब्रण्टन के ही शब्दानुवाद में पढ़ें– मुझे अभ्यास करते–करते यह विश्वास हो गया कि विमर्श और विचार के मूल का मुझे पता लग गया। अतः अपने ध्यान को एकाग्र रखने के लिए जिस प्रबल प्रयत्न को मैंने जारी रखा था, उसे शिथिल होने दिया मानो मैंने पूर्ण निष्काम भाव की वेदी पर स्वात्मार्पण कर दिया। इस दशा में सहज ही चित्तवृत्तियाँ विलय को प्राप्त हो गई। वितर्कना शून्यता में विलीन हो गई। उस समय जिस अनुपम, दिव्य अनुभूति का मैंने रसास्वादन किया वह अविस्मरणीय है। शारीरिक संस्पर्शों की अनुभूति या जानकारी नहीं रही। फूंकी हुई दीप–शिखा के समान विचार की ज्वाला निर्वापित हो गई। अभ्यान्तर चिन्मय प्रकाश में परिणत हुई। यह दशा देश, काल से अनवच्छिन्न है। मन एकदम अमनीभाव को प्राप्त हो गया। जैसे सुषुप्ति के समय अन्दरुनी हरकत भी रुक जाती है उसी प्रकार की सी अवस्था मेरी हो गई। मुझे अब पता था कि 'मैं कौन हूँ।' मेरा छुद्र अहम् अब उत्तमजहेपद् वाच्य में परिणत था। मैं एक प्रज्वलित ज्योति समुद्र के बीच में झूला–झूल रहा

था। या यह कहना ठीक होगा कि यह ज्वलित ज्योति ही वह आदिम पदार्थ है जिससे ब्रह्माण्ड निकाय परिणत हुए। वह ज्योति समुद्र अकथनीय अनन्त आकाश में व्यापा था। वह इतना जीता जागता चैतन्य तत्व था कि उसका बयान सम्भव नहीं है।

अनन्त आकाश के रंगमंच पर खेले जाने वाले रहस्यमय नाटक का अर्थ बिजली के समान मेरे बुद्धि में स्वयमेव कौंध गया। उस समय 'मैं' – नवीन 'मैं' पवित्र आनन्द की गोद में सुस्ता रहा था। मुझे दिव्य विमोक्ष प्राप्त हो गया। आनन्द के कारण मेरा काया पलट हो गया।

मैं कैसे बताऊँ कि इसके आगे मुझे।
कौन कौन सी अनुभूतियाँ प्राप्त हुई।।'

▣▣▣

जो चित्त आत्मा में निवेशित हो गया है और जिसके सारे मल समाधि के द्वारा धुल गये हैं, उसके आनन्द का वाणी के द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, केवल अन्त:करण द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

पूर्णावतार की सोलह कलायें क्या हैं?

डा. जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब (हिमाचल प्रदेश)

अखिल ब्रह्माण्ड नायक पूर्ण योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण साक्षात् श्री हरि विष्णु के अवतार थे। इसीलिए कृष्ण को पूर्णावतार माना गया है। पूर्णअवतार में कुल सोलह कलायें होती हैं। श्रीमद्भागवत (1/3/28) में कहा गया है–

एतेचांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान स्वयं।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे।।

अर्थात् अन्य सब अवतार तो भगवान के अंशावतार या कलावतार हैं, परंतु भगवान श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान (अवतारी) ही हैं। जब लोग दैत्यों के अत्याचारों से व्याकुल हो उठते हैं, तब युग–युग में अनेक रूप धारण करके भगवान उनकी रक्षा करते हैं। अत: श्री कृष्ण में भगवान होने के सभी गुण प्रकट थे, जो उनकी लीलाओं, चरित्रों से स्पष्ट होते हैं। इसमें किंचित भी संशय की गुंजाइश नहीं है। संशय करने वाले कभी खुशहाल नहीं हो सकते तथा विनाश को ही गले लगाते हैं:–

संशयात्मा विनश्यति। न सुखं संशयात्मन:।।

कृष्ण शब्द का अर्थ–

कृषिर्भूवाचक: शब्दोणश्च निर्वृत्तिवाचक:।
तयोरैक्यं परब्रह्मकृष्ण इत्यभिधीयते।।

भगवान श्रीकृष्ण सभी कलाओं से परिपूर्ण थे, यह उनकी समय–समय की जीवन लीलाओं से स्पष्ट है। चन्द्रवंश में अवतरित होने से वे सोलह कला पूर्ण कहे जाते हैं। शास्त्रों में लिखा गया है कि जब तक भगवान कृष्ण पृथ्वी पर रहे तब तक बैकुंठ लोक खाली रहा। यही कारण था, जब कभी उन्हें दिव्य हथियारों जैसे–सुदर्शन चक्र आदि की आवश्यकता पड़ी, तब–तब सुदर्शन चक्र उनके आवाहन पर तुरन्त उपस्थित हो जाता था।

सोलह कलायें निम्न प्रकार हैं।

1. प्रथम कला 'अन्न' है– अन्न से जीव मात्र की उत्पत्ति होती है। यथा–

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभव:।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव:।।

(गीता, 3/14)

अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी अन्न से पैदा होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ

से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

सभी प्राणियों की तृप्ति अन्न से ही होती है। अतः अन्न को ब्रह्म कहा गया है। **'अन्न ब्रह्मेति व्यजानात'** – अन्न की निन्दा करके ब्रह्म की निन्दा ही मानी गयी है। अतः भूलकर भी कभी अन्न की निन्दा न करें। अन्न से ही पेट की भूख शान्त होती है। अन्न का निन्दक नरकगामी बनता है। 'उद्भिज्जयोनि' का विकास अन्न से ही होता है। यह एक कला का अवतार है। इस योनि में प्राणमय कोश नहीं होता, इस कारण चल फिर नहीं सकते। इनमें केवल एक **चेतना** ही होती है। इस योनि में पेड़, पौधे, फसलें, झाड़ियाँ तथा वनस्पतियाँ पैदा हुई हैं।

2. द्वितीय कला है– स्वेदज सृष्टि :– स्वेदज का अर्थ पानी अथवा पसीने से है। पसीने के पानी की सहायता से जीव उत्पन्न होते हैं। इनमें अन्न तथा पसीने से प्राण पैदा होते हैं। मच्छर, मक्खी, जूँए तथा लीख इसी कला के जीव हैं। प्राणों के होने से यह जीव चल फिर सकते हैं।

3. तृतीय कला हैं, अन्नमय, प्राणमय तथा मनोमय कोश को :– इस तीसरी कला की उत्पत्ति, अन्न, प्राण, तथा मन के साथ होने से होती है, इसी कारण इसमें मन की उपस्थिति होने से इसमें **'प्रेम'** आ जाता है। इस सृष्टि को अण्डज कहा गया है। पक्षी, सर्प, छिपकली तथा अन्य उड़ने वाले जानवर इस कला से उत्पन्न हुआ करते हैं।

4. चतुर्थ कला, अन्न, प्राण, मन तथा विज्ञान :– इस कला में अन्न, प्राण, मन तथा विज्ञान की प्रधानता रहती है, अतः पशु योनि इसी कला के अन्तर्गत आती है। – चार पैरों वाले पशु, जानवर, गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़, कुत्ता, बिल्ली इत्यादि आते हैं। इनमें पराधीनता होती है। दूसरों पर निर्भरता बनी रहती है।

5. पंचमकला अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और बुद्धि (आनन्द) है– इस कला में अन्न, प्राण, मन, विज्ञान तथा बुद्धि की प्रधानता होती है, इस कला के प्राणी को पिण्डज कहा जाता है। विकसित आनन्दमय कोश अर्थात् बुद्धि होने से ही मनुष्य योनि पैदा हुई है। मनुष्य कर्म योनि है। सब योनियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ है। मनुष्य स्वयं अपना विकास कर सकता है, परंतु उपरोक्त अन्य कोई योनि अपना विकास करने में समर्थ नहीं है।

6. षष्ठम कला ऐश्वर्य (विभूति) है– ऐश्वर्य कला मनुष्यों में अपने–अपने कर्मों के अनुसार कम अथवा अधिक हो सकती है। परंतु भगवान में यह कला एकरस परिपूर्ण है। (गीता 10/41) में भगवान ने कहा है–

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्॥

अर्थात् जो–जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्य युक्त, कान्तियुक्त और शक्ति युक्त

वस्तु है, उस–उसको तू मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान।

7. सप्तम कला है, धर्म की– धर्म की रक्षा के लिए ही भगवान बार–बार पृथ्वी पर जन्मधारण करते हैं। सृष्टि की रचना भी धर्म के आधार पर हुई है। जब–जब धर्म में कमी आई, तब–तब भगवान ने अवतरण किया। भगवान ने गीता, 4/8 में मधुर शब्दों में कहा है–

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अर्थात् साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

8. अष्टम कला 'अर्थ' की है– अर्थ का मतलब धन सम्पत्ति से है। इस कला में धन–सम्पत्ति की कोई कमी नहीं रहती है। जब–जब परोपकार के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है, इच्छा करने पर सहज उपलब्ध हो जाती है। भगवान का 'साड़ी अवतार' इसी उद्देश्य को इंगित करता है। नरसीभगत की बेटी का भात भी स्वयं भगवान श्री कृष्ण जी महाराज ने भरा था। अतः सम्पूर्ण अर्थ भगवान की कृपा से बड़े सहज रूप से उपलब्ध हो जाया करते हैं।

9. नवम कला 'ज्ञान' है– भगवान ज्ञान का भंडार हैं। वे स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं। उनकी कृपा के बिना ज्ञान का प्रकाश होना असंभव है। भगवान सम्पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण और ओतप्रोत हैं। इसी कारण ज्ञानीजन भगवान को प्यारे लगते हैं।

10. दशम कला 'तेज' (प्रकाश) हैं– विश्व में जो प्रकाश फैला हुआ है सब ज्योति भगवान की ही है। सारा प्रकाश भगवान की सत्ता से है। भगवान स्वयं ही प्रकाशक हैं। सूर्य में तेज भगवान का ही है। प्राणी जब योग की उच्च श्रेणी में पहुँच जाता है, तो उसके चेहरे का रंग चमचमा जाता है, जिसे योग भाषा में 'औरा' (ओजस्व) कहा जाता है।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्व वेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।

(गीता 7/7)

अर्थात् हे अर्जुन! मैं जल में रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, वेदों में ओंकार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ।

11. एकादश कला 'यश' है– भगवान यश के सागर हैं। संसार का कोई भी व्यक्ति उनके यश की थाह नहीं पा सकता। वेदों में 'नेति–नेति' कहा गया है। भगवान शेष भी अपने सहस्त्र मुखों से भगवान के यश का गुणगान नहीं कर सकते।

12. द्वादश कला 'योग' है– दो या दो से अधिक के मिलन को योग कहा गया है। इसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलन योग है। भगवान श्रीकृष्ण समस्त योगियों के

ईश्वर अर्थात् पूर्ण योगेश्वर हैं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम्।।

गीता 18/78

अर्थात् हे राजन! जहाँ योगेश्वर भगवान कृष्ण है और जहाँ गाण्डीव–धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है– ऐसा मेरा मत है।

13. त्रयोदश कला 'सर्वज्ञता' है– संसार में भगवान ही पूर्ण सर्वज्ञ है। उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। अन्य सब में अल्पज्ञाता का भाव अवश्य झलकता है। ब्रह्मा का बछड़े तथा ग्वालों का छिपाना, शंकर का मोहिनी रूप देखकर मोहित होना, नारद का विश्व मोहिनी के साथ विवाह करने के लिए भगवान का रूप माँगना, इन्द्र का बृज पर कोप करना आदि सर्वज्ञता के अभाव का ही आभास नहीं तो और क्या है। इसीलिए ही भगवान सर्वज्ञ हैं।

14. चतुर्दश कला 'इच्छा' है– शास्त्रों में कहा गया है कि सृष्टि से पूर्व चारों तरफ घनघोर अँधेरा व्याप्त था। ब्रह्म अकेला था। अकेलेपन से उकता कर ब्रह्म ने इच्छा की 'एकोऽहं बहुस्याम्' अर्थात् एक से बहुत हो जाऊँ इसी से माया प्रगट हुई तथा सृष्टि प्रक्रिया शुरू हुई। इच्छा शक्ति के चार रूप (भेद) हैं– इच्छाशक्ति, योगमाया, महामाया तथा माया। भगवान श्री कृष्ण ने चारों से काम लिया। श्रीकृष्ण की कोई इच्छा व्यर्थ नहीं गयी।

15. पंचदश कला 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्रता' है– भगवान में यह कला सर्वतन्त्रस्वतंन्त्रता की है। भगवान पराधीन नहीं है। यथा–

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई।
भावइ मनहिं करहु तुम्ह सोइ।।

16. सोडश कला 'सर्वसिद्धि' है– विश्व के सारे कार्य भगवान की कृपा से ही होते हैं और हो रहे हैं तथा भविष्य में भी होंगे। भगवान के लिए कुछ भी अप्राप्त नहीं है।

उपर्युक्त सोलह कलायें पूर्णरूप से भगवान श्रीकृष्ण में पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। अतः श्रीमद्भागवत गीता, महाभारत, हरिवंश व ब्रह्मपुराण पढ़ने से स्पष्ट है। भगवान की गुण लीलायें अनन्त हैं। बड़े–बड़े लोग भी थाह नहीं पा सके, वहाँ अल्पबुद्धि मानवों की क्या गिनती है?

जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं।
कहहु तूल कोहि लेखे नाहीं।।

▣▣▣

'मैं शरणागत हूँ'

राजेश कुमार सिंह, बलिया

पहला प्रसंग

सन् 1991–92 का वर्ष, स्थान ऋषिकेश आश्रम, ब्रह्मचारी रामस्नेही तिवारी जी की तबियत अत्यन्त नाजुक, दमा–कफ की शिकायत, आश्रम वासियों की नजरों में बचने की कम सम्भावना।

ब्रह्मचारी रामस्नेही तिवारी जी जिनको आश्रम में तिवारी जी, ताऊ जी तथा डोंगरा कई नामों से गुरुभाई–बहन पुकारते हैं, जो आजकल सिद्ध सवाई आश्रम में ही रहकर सेवा कार्य करते हैं। लगभग 15–20 वर्ष पहले ऋषिकेश आश्रम में रहते थे। उनको वहाँ दमा–कफ की शिकायत हो गई; शरीर धीरे–धीरे कमजोर पड़ने लगा। आश्रमवासियों की नजरों में बचने की स्थिति नहीं थी। आचार्य केशव देव जी तथा आचार्य पूर्णचन्द्र जी कहने लगे लगता है तिवारी जी ज्यादा दिन के मेहमान नहीं हैं। अपनी स्थिति देखकर तथा अन्य गुरुभाईयों के शब्दों को सुनकर तिवारी जी भी भांप गये थे कि वो अब इस मायावी दुनिया से विदा होने वाले हैं। वो प्रभु जी और गुरुजी का अनवरत चिन्तन करने लगे, इस तरह समय एक–एक दिन करके किसी तरह गुजर रहा था। एक दिन वो देख रहे हैं कि दो व्यक्ति एक दिव्य रथ लेकर आये और तिवारी को उस पर बैठाने के लिए बिस्तर से उठाने लगे, एक सिर की तरफ तथा दूसरा पैर की ओर लगा था। लेकिन तिवारी जी का आश्रम मोह सामने आ गया, वो श्री प्रभुजी से तथा सद्गुरुदेव जी से प्रार्थना करने लगे कि ये दोनों व्यक्ति आश्रम से मुझे हटाना चाहते हैं, आप मेरी रक्षा कीजिए 'मैं शरणागत हूँ।' इतने में प्रभुजी और गुरुजी तिवारी जी के नजरों के सामने थे। प्रभु जी और गुरुजी को देखकर वे दोनों पुरुष जो तिवारी जी को लेने आये थे विलुप्त हो गये। श्रद्धेय तिवारी जी आज भी आश्रम में रहकर अपने शेषकार्यों का निपटारा कर रहे हैं।

दूसरा प्रसंग

ब्रह्मचारी रामस्नेही तिवारी जी के छोटे भाई श्री राजेन्द्र तिवारी जी को लकवे की शिकायत हो गई थी। वो कुछ खा–पी नहीं पा रहे थे, चम्मच से दुग्ध या पानी किसी तरह दिया जा रहा था। तिवारी जी को जब यह समाचार मिला तो भाई को देखने आगरा गये, उनकी स्थिति देखकर ब्रह्मचारी जी का ह्रदय क्रंदन करने लगा और सोचने लगे कि इसका पूरा परिवार बर्बाद हो जायेगा। भाई की गम्भीर स्थिति देखकर वो सिद्ध सवाई आश्रम लौटे तथा

ब्रह्मचारी देवी चन्द्र शुक्ला जी के कमरे में लेटकर आर्त भाव से प्रभु जी तथा गुरुजी से विनय करने लगे कि उस भाई के तीन पुत्रियाँ तथा एक पुत्र किसी काम के नहीं रह जायेंगे, उनका देखभाल करने वाला फिर कौन हो? आप दया करो दीनानाथ 'मैं शरणागत हूँ' ये प्रार्थना करते–करते तिवारी जी नींद के आगोश में आ गये। फिर गुरुजी उनको स्वप्न में दर्शन देकर कहे, 'लल्ला तुम निराश न हो गुफा से रज और पुष्प प्रसाद ले जा और भाई को खिला दे वो ठीक हो जायेगा। तिवारी जी बिना समय गवाये गुड़हल के फूल जो उस वक्त उन्हें आश्रम में ही मिल गया पाँच तोड़ लाये तथा श्री प्रभु चरणों में निवेदित कर दिये, पुनः ब्रह्मचारी आचार्य डा. दासलाल शर्मा जी से बोले कि आप अपने हाथ से रज और ये पुष्प प्रसाद दे दें। मेरे भाई को देने हैं तथा उनसे सारी वृतान्त बता दिये। गुफा से आचार्य जी के हाथों प्रसाद लेकर तिवारी जी अपने भाई के पास आगरा चले गये। ज्योंही रज प्रसाद भाई के मुख में गया, वो आँखें खोल दिये जो कई दिनों से नहीं खोल पा रहे थे, फिर पुष्प प्रसाद ग्रहण किये और उठकर अपने बड़े भाई ब्रह्मचारी तिवारी जी का चरण स्पर्श किये। इस तह उस दिव्य प्रसाद को लेने के बाद वो पूर्णतः निरोग हो गये।

एक रोज तिवारी जी के मन ने ये प्रश्न खुद से किया कि इस भाई को लकवा की शिकायत क्यों हुई ? कुछ न कुछ इसके गलत संस्कार अवश्य होंगे। तिवारी जी ध्यान में बैठे तो देखते हैं कि इनका भाई ने पूर्व जन्म में एक निर्दोष गाय को बुरी तरह मुँह पर मार दिये थे, जिससे वो गाय खाने–पीने में असमर्थ हो गई थी, उसी का दण्ड इनको इस जन्म में इस रूप में मिला।

▣ ▣ ▣

सच्चा शिष्य गुरु के किसी बाहरी काम पर लक्ष्य नहीं करता। वह तो केवल गुरु की आज्ञा को ही सिर नवाकर पालन करता है।

श्री गीतामृत – पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे) अध्याय – 3

अर्जुन उवाच

कर्मो से यदि श्रेष्ठ, जनार्दन ! ज्ञान मुझे बतलाते हो।
तब इस घोर कर्म में केशव ! क्यों तुम मुझे लगाते हो।।1।।

मिले जुले वचनों से मेरी, क्यों करते हो बुकिद्ध भ्रमित।
जिसमें हो मेरा हित केशव! वही बात कह दो निश्चित।।2।।

श्रीभगवानुवाच

जग में निष्ठाएँ दो होतीं, चर्चा मैंने की उनकी।
ज्ञान–योग निष्ठा ज्ञानी की निष्ठा कर्म–योग योगी जन की।।3।।

कर्म न करने से केवल, निष्काम न कोई बन जाता।
कर्म–त्याग कर देने से ही सिद्धि नहीं कोई पाता।।4।।

कर्म बिना कोई भी क्षण–भर, रह सकता है नहीं कभी।
सहज गुणों से प्रेरित होकर करते हैं नर कर्म सभी।।5।।

कर्मेन्द्रिय को रोक, विषय का जो चिन्तन करते रहते।
विषयलीन उन मूढ़ जनों को, मिथ्याचारी सब कहते।।6।।

मन से इन्द्रिय का निरोध कर, अनासक्त जो नर रहते।
कर्म योग के साधन द्वारा, श्रेष्ठ अमर पद पा लेते।।7।।

नियत कर्म तुम करते जाओ, हैं अकर्म से कर्म बड़े।
तन का भी निर्वाह कठिन है, बिना कर्म यदि रहो पड़े।।8।।

यज्ञादिक कर्मों को तजकर, कर्म सभी जग में बन्धन।
अनासक्त बन, यज्ञ हेतु सब कर्म करो, कुन्ती–नन्दन।।9।।

ब्रह्मा ने तब यही कहा था, सृष्टि प्रजा की हुई जभी–
'यज्ञ तुम्हारी कामधेनु हो, इससे पाओ वृद्धि सभी'।।10।।

करो तुष्ट देवों को इससे, तब सुख का वे करें विधान।
दोनों उन्नति करो परस्पर परमश्रेय का यही निधान।।11।।

यज्ञ कर्म से तुष्ट देवगण, देंगे तुझे सुखों का भोग।
उनकी वस्तु न उनको देकर, करते भोग, चोर वे लोग।।12।।

शेष अन्त यज्ञों का खाकर, सन्त पाप से छुट जाते।
जो अपने ही लिए पकाते, वे हैं पापी अघ खाते।।13।।

प्राणी सभी अन्न से जीते, मेघ सभी को देता अन्न।
तथा मेघ बनता यज्ञों से, कर्मों से ही यज्ञोत्पन्न।।14।।

वेद–जनित कर्मों को जानो, ईश–जनित है वेद महान।
सर्वव्यापी ब्रह्म इसी से, यज्ञों में पाता सम्मान।।15।।

इसी चक्र का अनुगामी बन, कर्म न करता जो मतिहीन।
विषय–भोग में व्यर्थ बिताता, जीवन अपना वह अघलीन।।16।।

आत्मा में सुख अनुभव करता, आत्म तृप्ति है जिसे विशेष।
आत्म–तुष्टि जिसको है अर्जुन! कार्य न कुछ उसको है शेष।।17।।

उसे किए या नहीं किए भी, कर्मों से कुछ लाभ नहीं।
कभी किसी से भूत मात्र में, उसे नहीं है स्वार्थ कहीं।।18।।

कर्म यथोचित करते जाना, होना कभी न उसमें लीन।
परमपुरुष को वह पाता है, जो रहता आसक्ति–विहीन।।19।।

परम सिद्धि कर्मों से पाई, जनक आदि ने, यह तू जान।
कर्म सदा करना हे अर्जुन! जग के हित का रखकर ध्यान।।20।।

बड़े–बड़े जन जैसा करते, और सभी करते वैसा।
अनुगामी बनकर वे करते, कर्म बड़ों का है जैसा।।21।।

सिद्धयोग के अनुवर्ती संत

दर्शनानन्द

मध्यकाल (बारहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी) भारतीय जनजीवन के लिए लौकिक पतन का समय रहा है। भारतीय समाज इस्लामिक आक्रमण से पूर्णतया दब चुका था। हिंदुत्व पर भी यह परकिय आक्रमण बुरा प्रभाव डाल चुका था। समाज विविध अंधविश्वासों से घिरा हुआ था। उसमें अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थी। यह काल हिंदुस्तान के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पतन का समय था। दूसरी तरफ इस काल की विशेषता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है, कि पूरे भारतवर्ष में विभिन्न प्रांतों में संतों का प्राकट्य हुआ। यह प्राकट्य तब हुआ जब समाज पर परिकय हमलावरों के आक्रमण हो रहे थे। समाज की आर्थिक लूट हो रही थी। समाज बहुत ज्यादा अनपढ़ था। पढ़ाई–लिखाई मानो समाज के एक विशेष वर्ग की ठेकेदारी हो गई थी। धर्म के नाम पर अंधविश्वास फैल चुका था। हिंदुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाता था। भाषा के साथ भी यही हो रहा था।

समान्यतः लोग इन्हें भक्ति मार्गी संतों के रूप में स्वीकार करते हैं। जिन्होंने अपने जीवन में समाज को भक्ति ज्ञान का पाठ पढ़ाकर, समाज को अवनति की खाई में गिरने से बचाया है एवं उसकी कुरितियों को मिटाया है। इन संतों में संत नामदेव, एकनाथ, जनाबाई, तुकाराम, मीराबाई, रोहिदास, संत ज्ञानेश्वर, कबीर, रसखान, तुलसीदास जैसे संत थे, जिन्होंने अपने जीवन और लेखन से समाज पर अनगिनत उपकार किये हैं।

एक विशेषता और है, कि वर्णव्यवस्था में जो जातिवाद एवं छूआ–छूत जैसे लौकिक, अमर्यादित व्यवहार से हिंदु समाज अलग–अलग होता जा रहा था, उसे संतों ने ऊँच–नीच का भेद हटाकर आध्यात्म के अटूट बंधन से बांधकर रखा है।

''सकलांसी भेथ आहे आधिकार। कलीयुगी उद्धार हरिच्चा नामे।।'' संत **तुकाराम** अथवा **''मृणोनि कुलजानिवर्ण। हे अवहोचि गा अकारण।''** संत ज्ञानेश्वर

तात्पर्य – यहाँ कलियुग में सब जाति, धर्म के लोगों को अपने उद्धार का अधिकार है। कलियुग में हरिनाम ही उद्धार का एकमेव साधन छातीठोक के बताया है। उनके इस तत्वज्ञान से और उनके जीवन के अनगिनत उदाहरणों से उन्होंने जातिभेद की प्रथा को एक अनिष्ट प्रथा बताते हुए, उस पर हमला बोल दिया है। उसी के परिणामस्वरूप भिन्न–भिन्न निचली जातियों में भी उच्चकोटि के संतों का आविर्भाव हुआ है। जैसे रविदास चम्हार, सेना नाई, गोरा कुम्हार, कबीर जुलाहा, सावता माली, संत ज्ञानेश्वर, एकनाथ, भानुदास ब्राह्मण, संत तुकाराम बनिया आदि आदि।

इन संतों के जीवन में यह समानता पाये जाने का कारण यह था कि, उन्होंने अपने धर्मग्रंथों की शिक्षा को अपने जीवन का अटूट हिस्सा बनाया था।

''वेदांचा तो अर्थ आम्हासीची ठावा। इतरांनी वहावा भार माथा।'' संत तुकाराम

तात्पर्य– वेदोक्त तत्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान सर्व खल्विदं ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मस्मी' यह जो भी है, इसे केवल हम ही जानते हैं। क्योंकि हमने इस तत्वज्ञान को अपने जीवन में घटाया है, उतारा है। बाकी सब शब्दों के बोझ होने वाले हैं इन कड़े शब्दों में तथाकथित ब्राह्मण समाज पर टिप्पणी संत तुकाराम ने की है। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं।

आश्चर्य का विषय यह है कि इतनी सरलता से, सहजता से, इन संतों ने स्वयं सगुण अवतारों का प्रत्यक्ष दर्शनलाभ करके, मुक्ति पाते हुए, अपने इष्ट एवं सद्गुरु के आदेश एवं आशीर्वाद से सगुण–निर्गुण, जाति–पाति, ज्ञान कांड कर्मकांड इत्यादि में भटकते हुए हिंदू जनमानस को अपने सच्चे धर्म में आस्था का बीजारोपण किया। यह समय इस्लामिक आक्रमणों का था, जिसमें हिंदुत्व फीका पड़ चुका था बँट चुका था।

'अव्यक्तां ही गर्तिदु:ख:' 'क्लेशोअधिकतर अस्तेषां' का तत्वज्ञान अपने उदाहरणों से समाज के सामने रखकर दिखाया की निर्गुण भक्ति में दु:ख ज्यादा है। डूबने का डर है। इसलिए सगुण भक्ति का सहज सरल मार्ग समाज के सामने रखा।

'नलागनी सायास जावे वनांतरा। सुखे येतो घरा नारायण' अथवा **'ठायीच बैसोनि करा एकचित्त। आवडी अनंत आलवावा।'** संत ज्ञानेश्वर

इन शब्दों में यह बताया गया है कि भगवत प्राप्ति के लिए ज्यादा कठिन प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है और न ही वनों में जाने की आवश्यकता है। नारायण तुम्हारे घर में, सुख से आयेंगे, कैसे? यह देखने के लिए एक जगह पर बैठकर मन को एकाग्र करो और भगवान का नाम घोष करो। इन महापुरुषों के जीवन चरित्र भक्ति मार्ग की सुकरता का दर्शन कराते हैं, परंतु इनके पढ़ने पर यह ज्ञात होता है कि इन सभी को आध्यात्मिक ज्योति सद्गुरु कृपा से ही प्राप्त हुई है तथा इष्ट साक्षात्कार के पीछे की साधना का स्वरूप सिद्धयानुकंपा या सद्गुरुकृपा ही रहा है। गुरुभक्ति एवं उनका महिमागान, नाम जप की प्रगाढ़ता, उनका त्रिस्मरणीय सेवाभाव, त्रिस्मरीय का मतलब है 1. सद्गुरु के प्रति सेवा भाव 2. समाज के प्रति सेवा भाव 3. उनका चल–अचल सृष्टी पहाड़, पर्वत, पेड़, नदी, पंछी जानवर इनके प्रति सेवाभाव (भूतदया) अपने इष्ट के प्रति उनका समर्पण एवं उनकी लीलाचरित्रों का सतत चिंतन ही मुख्य रूप से उनकी साधना का आधार रहा है। क्योंकि सिद्धयोग में सद्गुरु के शक्तिपात से सहज ही साधक को तत्काल पात्रतानुसार आध्यात्मिक अनुभव होने लगते हैं। इसी कारण जीवन में उस अव्यक्त तत्व की खोज के प्रति प्रगाढ़ लालसा एवं उद्दीप्त वैराग्य लक्ष्य तक पहुँचाने का प्रमुख साधन बनता है।

मजे की बात यह है कि इन संतों के जीवन में सगुण और निर्गुण एक साथ हाथों में हाथ डाले चलते हुआ दिखाई देता है। गीता के अनुसार निर्गुण साधना अधिक कष्टप्रद और दु:खप्रद है।

क्लेशो अधिकतर भलेषां अव्यकासक चेतसाम् ।
अज्जका ही गर्निदु:खः देहवभिदर अवाफने।।

निर्गुण की उपासना याने उस ब्रह्म की उपासना जो अव्यक्त सर्वत्रंग, अचिंत्य अचल अनिर्देश्य, विभू है। जो केवल ज्ञानगम्य है, जिसका केवल तर्क से अनुमान लगाया जा सकता है। उस परब्रह्म, परमात्मा की प्राप्ति का अधिकारी कोई महाबुद्धिवान ही होगा। जिस ब्रह्म का वर्णन करते हुए ऋतंभरा प्रज्ञा वाले मनिषी 'नेति नेति' कहकर मौन धारण करते हैं। तो सर्वसामान्य जन की क्या पात्रता? तो सवाल यह उठता है कि क्या सर्वसामान्य जनों का उद्धार कभी नहीं होगा?

यह सवाल अनुत्तरित नही है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव का गर्व हरण करवाने का जो खेल खेला था, वह इसी प्रश्न का उत्तर था। गोपियों ने बड़े मार्मिक शब्दों में उद्धव को वर्णन किया है। निर्गुण की उपासना के आवश्यक ज्ञान और बुद्धिया सबके पास होना संभव नहीं है। 'संलियन इंद्रियग्राम' इंद्रियों का संयमन करना भी सबके बस की बात नहीं है। इसीलिए इन संतों ने गोपियों द्वारा दिखाये हुए रास्ते का अनुसरण करने हुए सगुण भक्ति का रास्ता अपनाया। इन संतो के जीवन में विश्व के सर्व तत्वज्ञान अपने आप ही साकार होते गये है। इसमें उन्होंने कोई खास प्रयास किया हुआ नहीं दिखता। यदि वह संत ऊपर से सगुण उपासक दिखते हैं, परंतु बारीकी से देखा जाये तो उनके जितना निर्गुण को किसी ने समझा ही नहीं। नहीं तो वह गधे को गंगाजल कहीं पिलाते, कुत्ते के पीछे घी का कटोरा लेकर नहीं दौड़ते और ना ही उनके पास यह कहने का अधिकार होता की 'वेदांचा तो अर्थ आम्हासीची ठावा।' वेदों का असली मतलब हमसे अच्छा कौन जान सकता है। या' वृक्षवल्ली आम्हासोयरे वनचरे।' तात्पर्य – यह पेड़, लतायें हमारे रिश्तेदार, सगे है।

बहुधा सर्व संत समाज की दृष्टि से अनपढ़ थे। परंतु उनके जीवन चरित्रों ने विद्वानों को हमेशा प्रसिद्ध किया है। आगे करते रहेंगे। इन संतो की जीवन में योग बिना साधना किये साधना गया है। यम नियम क्या है उन्हें पता की नहीं परंतु जीवन सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, शौच, स्वाध्याय, तप, ईश्वर, प्रणिधानादी मन नियमों से परिपूर्ण दिखता है।

योग का सबसे आखिरी साधन समाधि की उनके जीवन में सहज ही प्राप्त होता दिखता है। गीता तत्वज्ञान ' सतत किर्तयन्तो मां' को अपने जीवन में अक्षरश: उतारते हुए स्वधर्म का पालन करते हुए, यह संत मुक्ति तक पहुँचते हैं। योगदर्शन का सूत्र 'प्रणवादि पवित्राणां जप:। मोक्षशास्त्र अध्ययनम्वा। यह भी उनके जीवन में दिखाई देता है। फर्क सिर्फ इतना है कि वह सगुण परब्रह्म का नाम जप करते हैं। और संत साहित्यों का अध्ययन करते हैं।

वेदों का तत्वज्ञान ''अहं ब्रह्मस्मी।'' 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' यह भी उनके जीवन में घटाया दिखाई देता है। इसलिए ऊपर यह कहा गया है कि संतों की जीवन में सगुण और निर्गुण साथ–साथ चलते हैं। दोनों एक दूसरे बिना अधूरे ही हैं।

दूसरी एक जरूरी बात इन संतों के जीवन में घटित हुए चमत्कारों के विषय में है। यह कि हर एक संत की जीवन में कोई न कोई चमत्कार घटित हुआ है। घटित हुआ है, कहने का मतलब यह है कि संतों ने जानबूझकर अपनी शक्ति खर्च करके चमत्कार नहीं दिखाये। इन संतों को विपत्ती में देखकर इनके अपने अपने इष्ट देवों ने जो अनुकंपा उन पर दिखाई है उसके परिणामस्वरूप यह चमत्कार घटित हुए है।

इन संतों की चरित्रों की गरिमा देखी जाये तो यह चमत्कार उसके सामने छोटे लगते हैं। योगियों ने जो भी चमत्कार दिखाये है उनमें उनकी शक्ति खर्च हुई है। योगियों के लिए चमत्कार, सिद्धियाँ मार्ग की रुकावटें है। तो भक्तों को पता ही नहीं चला कि उन्होंने कौन सी सिद्धि पायी है, कौन सा चमत्कार किया है।

समर्थ रामदास, एकनाथ, नामदेव तुकाराम, ज्ञानेश्वर, चांगदेव, मुन्नाबाई इत्यादि अनेकानेक संत अपने अपने गुरु के या इष्ट देव के अनुकंपा से ही अपनी परम उन्नति को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

आखिर में उनके इष्टदेव उनसे पूछते हैं कि, बनता क्या है रजा तेरी ? तो संत कहते है कि कुछ नहीं। भगवान कहते है कि मुक्ति देता हूँ। संत कहते हैं कि हमें मुक्ति मत देना, मुक्ति के बाद हम तेरा मीठा नाम मुख से नहीं ले पायेंगे। हमें बार–बार मनुष्य योनि मिले ताकि हम तुम्हारा भजन कर सकें।

मार्ग चाहे ज्ञानयोग, भक्ति योग, कर्मयोग जो भी हो, सबकी साधनाओं का अंतिम उद्देश्य सायुज्यता मुक्ति ही है। इन सभी साधनमार्गों में मन की एकाग्रता भी अत्यन्त आवश्यक होती है। बिना सद्गुरु के कृपा के कोई साधक किसी मार्ग में साधना की उच्चतम स्थिति को नहीं पहुँच सकता। इसलिए मुक्ति को मना करने वाले इन संतों की मुक्ति होना अनिवार्य है।

गुरूपदिष्ट मार्ग से भक्ति, सेवा, निष्काम कर्मयोग इत्यादि साधनों को अपने जीवन में साधते हुए, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, लाभ शांति इत्यादि उच्च कोटि के तत्वज्ञान को सहज ही जीवन में उतारने वाले और सद्गुरु कृपा से या सिद्धानुकंपा से अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने वाले इन सिद्धयोग के अनुवर्ती संतों में से जिनके चरित्र हमारे पास उपलब्ध है उनके चरित्र इस लेख माला में हम आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। अगले अंक से यह चरित्र लेखों के रूप में प्रकाशित होंगे।

क्रमशः

श्री सद्गुरु करे सो होय

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

परब्रह्म सद्गुरु तत्व स्वयं मानव भेष में योग–योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के परम चमत्कारी साकार विग्रहों के रूप में इस धराधाम पर अवतरित होकर एवं अपने परम दिव्य अलौकिक क्रिया कलापों व शक्ति संचार के द्वारा जगत को निहाल एवं मालामाल कर दिया। उन्होंने वह सब कार्य खेल–खेल में ऐसे कर दिखाये जो सृष्टि में अन्य के लिए सामर्थ्य से परे थे। लुप्त प्रायः सिद्धयोग को जगत में पुनर्स्थापित करने के साथ–साथ जगत कल्याण के अन्तर्गत असम्भव से असम्भव कार्य भी किये, उसमें से एक कार्य है मृतकों को जीवनदान। ऐसी ही अनेकों घटनाओं में से दो अलौकिक घटनायें श्री सद्गुरु कृपा की यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की स्तुति की यह उक्ति बार–बार स्मरण हो रही है कि 'कर्त्ता करे ना कर सके, श्री सद्गुरु करे सो होय।'

प्रथम

श्रीमती शशी शर्मा हमारी गुरु बहन हैं। इनके पति बी.एस.एफ. (सीमा सुरक्षाबल) में थे। वह सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षित थे, इन्होंने महाप्रभु श्री रामलाल योग मन्दिर आर.के. पुरम सेक्टर–4 नई दिल्ली में विधिवत् योग दीक्षा श्री गुरुदेव भगवान से प्राप्त की थी फिर इनके पति का ट्रान्सफर (तबादला) अन्य स्थान पर हो गया। श्री सद्गुरुदेव जी के आशीर्वाद से पुत्र का जन्म हुआ, पुत्र का जन्म कैसे हुआ। यह परम आश्चर्य की बात है कि सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन प्रभु जी ने किस प्रकार से मृतक बालक को पुनर्जीवित करके जीवन प्रदान किया। यह अति विलक्षण घटना है जो सिद्धयोग के सुयोग्य पाठकों के लिए प्रस्तुत है। बहन श्रीमती शशी शर्मा जी का प्रसव समय से काफी पहले यानि छः माह में ही हो गया। प्रीमेच्योर बेबी पैदा हुआ, बच्चे के नाखून भी नहीं बने थे सिर पर बाल एवं खाल की जगह एक पतली सी झिल्ली ही थी। ऐसे बच्चे के पैदा होते ही अस्पताल का सारा स्टाफ उसे बचाने में लग गया। उस समय नर्सरी की सुविधा बच्चों के लिए नहीं थी। काफी समय तक बच्चे को बचाने के प्रयास चलते रहे, परंतु बच्चे को बचाया नहीं जा सका। बच्चा रात में ही किसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गया। नर्स ने मृतक बच्चा लाकर माता–पिता को दे दिया। बच्चे के पिता जी ने मृतक शरीर को अखबार के कागज में लपेटकर पलंग के सिरहाने सुरक्षित स्थान पर रख दिया कि अब रात में अंतिम संस्कार के लिए कहाँ जायें। सुबह होने पर अन्तिम संस्कार कर देंगे। जब यह बात बहन शशी शर्मा को पता चली कि बच्चा मर चुका है तो उनको बहुत दुःख हुआ और वह अपने श्री सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन प्रभु जी का स्मरण करके

आर्तभाव से प्रार्थना करने करने लगी कि गुरुदेव जी! आप तो सर्व शक्तिमान् हैं। दुनिया में कौन सा ऐसा कार्य है जो आप नहीं कर सकते। आपने मुझे ऐसा बालक दिया और उसका भी जीवन नहीं रहा। बहन श्रीमती शशी शर्मा को रोते-रोते कुछ नींद सी आ गयी। उस समय बहन जी को श्री सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन प्रभु जी के दर्शन हुए और ऐसा दिखायी दिया कि उन्होंने अर्थात् श्री गुरुदेव जी ने बच्चे को जीवन दान दे दिया है। स्वप्न में यह दृश्य चल ही रहा था, इतने में ही ड्यूटी बदल जाने पर दूसरी नर्स आयी तो वह बहन जी के कमरे में गयी तो उसकी नजर अखबार के कागज में लिपटे बच्चे पर चली गयी तो वह सन्न रह गयी। उसने बच्चे को उठाकर देखा तो बच्चा जीवित हो चुका था। नर्स ने तुरन्त ही शशी शर्मा को जगाया और कहा कि तुम कैसी माँ हो जो जिन्दा बच्चे को अखबार में लपेटकर रखती हो। बहन जी ने नर्स को बताया कि छः माह का प्रीमच्योर बेबी पैदा हुआ था, जिसे डाक्टर साहब के बहुत प्रयास करने पर भी नहीं बचाया जा सका और बच्चा मर चुका है। अखबार में लपेटकर इसलिए रखा है कि सुबह इसका (बच्चे का) दाह संस्कार कर देंगे। देखो तुम्हारा बेबी जिन्दा हो गया है और तुम अन्तिम संस्कार की बात करती हो। बच्चे के जिन्दा होने की बात नर्स ने तत्काल ही जाकर डाक्टर साहब को बतलायी तो डाक्टर ने बच्चे को तत्काल चेक किया जो बच्चा मर गया था, उसे जिन्दा देखकर आश्चर्य चकित हो गया। डाक्टर ने तत्काल ही उस बच्चे के लिए बल्ब आदि लगाकर तापमान को उसके लायक बनाया और इलाज की सारी व्यवस्था की गयी। कई महिने बच्चे को एक निश्चित तापमान पर कमरे में रखा गया और बच्चा ठीक होकर अपने घर आ गया। आज वह बालक लगभग 25 (पच्चीस) वर्ष का है एवं इस समय अच्छी नौकरी में कार्यरत है और श्रीमती शशी शर्मा जी को एक ही पुत्र है। हमारे एक गुरुभाई की पुत्री से ही उसका विवाह संस्कार हुआ है। इतनी चमत्कारिक घटना घटने के बावजूद भी कुछ समय पश्चात् यह दम्पत्ति श्री सद्गुरुदेव जी को बिल्कुल भूल गये। मेरी समझ से शायद इसका कारण बार-बार स्थानान्तरण (तबादला) या अन्य कारण रहा हो, परन्तु श्री गुरुदेव जी तो अपने बच्चों को कभी नहीं भूलते। कुछ वर्ष पूर्व ही बहन जी सहारनपुर आकर रहने लगी व श्री महाप्रभु जी के सत्संग में किसी प्रकार पहुँच गयी, जब बहन जी सत्संग में बैठी तो श्री सद्गुरुदेव भगवान जी से योग दीक्षा व चमत्कारी घटनायें स्वतः ही स्मरण हो गया एवं वह तत्काल बोल पड़ी की मेरे गुरुदेव भी यही हैं और हमारे ऊपर इन्होंने (श्री सद्गुरुदेव जी ने) भारी कृपायें की हैं।

द्वितीय

श्रीमती रमा देवी श्री सिद्धयोग शक्ति संचार मन्दिर मोहल्ला कायस्थान सहारनपुर में विराजित योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के सिद्ध दरबार की कृपा पात्र महिला है। इनकी सुपुत्री श्रीमती चारू गर्ग देहरादून में रहती है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी की कृपा से वह गर्भवती हो गयी, क्योंकि श्रीमती चारू गर्ग के मन में पुत्र प्राप्ति की

प्रबल इच्छा थी। श्रीमती गर्ग के दो महिने तो ठीक से निकल गये, परंतु उसके पश्चात् पेट में अत्यधिक दर्द रहने लगा। अत्यधिक दर्द रहने के कारण श्रीमती गर्ग को लेडी डाक्टर से दिखलाया गया। लेडी डाक्टर ने दवा दी एवं कम्पलीट बेडरेस्ट (आराम) करने को कहा। डाक्टर के कथनानुसार वैसा ही किया गया, परंतु दर्द बढ़ता ही गया तो फिर श्रीमती चारू गर्ग के लेडी डाक्टर से दिखलाया गया, तो डाक्टर ने कुछ टेस्ट एवं अल्ट्रासाउण्ड को कहा। अल्ट्रासाउण्ड कराने पर ज्ञात हुआ कि पेट में पानी भर गया है। समस्या अत्यन्त गम्भीर हो गयी। दवाई देने के बाद भी कोई लाभ नहीं मिला तो अन्त में लेडी डाक्टर ने स्पष्ट कह दिया कि हमें पाँचवे माह में ही एवार्शन करना पड़ेगा नहीं तो स्थिति और बद्‌तर (खराब) हो जायेगी। असहनीय दर्द और पेट में पानी भरने का कोई दूसरा इलाज नहीं है एवं जो बच्चा पैदा होगा वह भी दिमाग से दोषयुक्त ही होगा। इसलिए इसका एबार्शन आवश्यक हो गया है। कल शाम को एबार्शन कर दिया जायेगा। यह सारी घटना श्रीमती चारू गर्ग ने अपनी माँ श्रीमती रमा देवी को सहारनपुर फोन करके बतायी। श्रीमती रमा देवी जी तत्काल ही योग–योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के सिद्धयोग शक्ति संचार दरबार पहुँच गयी एवं कातरस्वर में रोती हुई श्री महाप्रभु जी से प्रार्थना करने लगी कि हे दयानिधान, करूणा सागर आप तो सर्व समर्थ है। आप मेरी लड़की का कष्ट हरें एवं उसके बच्चे को बचा लें। यही प्रार्थना बार–बार रोती हुई करती रही तथा योग–योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी के चरणों में चाँदी के छत्र समर्पित करने का संकल्प लिया एवं कहा कि हे दयानिधान, करूणासागर आप दया कर दें, कृपा कर दें। श्रीमती रमा देवी प्रार्थना करके अपने निवास पर चली गयी और अपनी पुत्री को सारी बात फोन करके देहरादून बता दी। आश्चर्य महान आश्चर्य तभी श्री महाप्रभु जी का चमत्कार हो गया (यानि महाप्रभु जी द्वारा कृपा हो गयी)। अगले दिन जब लेडी डाक्टर के पास श्रीमती चारू गर्ग को ले जाया गया तो डाक्टर ने पुनः अल्ट्रासाउण्ड करके चेक किया, तो पेट का पानी बिल्कुल ही गायब हो चुका था। दर्द भी बिल्कुल ही ठीक हो गया था। डाक्टर से श्रीमती चारू गर्ग बोली, मैडम मुझे अब कोई कष्ट महसूस नहीं हो रहा है क्या एबार्शन रोका नहीं जा सकता। लेडी डाक्टर बोली मैं आश्चर्य चकित होकर यही तो देख रही हूँ कि तुम्हारी स्थिति इतनी खराब थी, अचानक एक दिन में ही तुम बिल्कुल ठीक कैसे हो गयी। आखिरकार पेट का इतना पानी कहाँ चला गया व दर्द भी बिल्कुल ही ठीक हो गया। यह चमत्कार से कम नहीं है। अब तुम्हारे लिए एबार्शन कराने कि जरूरत नहीं है। श्रीमती चारू गर्ग ने अपना गर्भकाल शान्तिपूर्वक पूरा करके समय आने पर एक स्वस्थ्य पुत्र को जन्म दिया, जिसकी उम्र लगभग इस समय पाँच वर्ष की है। यह कार्य योगेश्वर द्वय (योग–योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगिराज श्री चन्द्रमोहन प्रभु जी) की महती कृपा करने की वजह से ही प्राप्त हो सका। दयानिधान, करूणासागर श्री प्रभु जी की एक ही कृपा दृष्टि ने श्रीमती चारू गर्ग का सारा संकट क्षणमात्र में ही हर लिया।

तृतीय

श्री सिद्धयोग शक्ति संचार मन्दिर सहारनपुर में 2,3 व 4 अक्टूबर सन् दो हजार नौ को योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन प्रभुजी का जन्म शताब्दी समारोह मनाने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। श्री सिद्धगुफा सवाई सद्गुरु परम योगपीठ के महान आचार्य श्री दासलाल जी महाराज को आमन्त्रित किया गया था। सर्वत्र उनके (आचार्य जी) आगमन की सूचना भेज दी गयी (अर्थात प्रसारित करा दी गयी)। किंतु दुःखद बात यह रही कि अचानक व्यस्तता के कारण परम आचार्य श्री दासलाल जी महाराज के न आने की लिखित सूचना हमें प्राप्त हुई तो हमारे सारे प्रयास असफल होते नजर आये। सभी कार्य रोक दिये गये कि अब क्या किया जाय इस परिस्थिति में श्री प्रभु जी का जन्म शताब्दी समारोह कैसे सम्पन्न होगा। हमने श्री सिद्धयोग शक्ति संचार मन्दिर के दरबार में बैठकर योगिराज अनन्तर श्री चन्द्रमोहन प्रभु जी से प्रार्थना की कि अब आप ही जानें कि कैसे कार्यक्रम होगा। मेरी लज्जा श्री प्रभु जी आपके ही हाथ है। अत्यधिक चिन्ता होने के कारण रात्रि में नींद भी नहीं आयी। प्रातः काल हमें श्रीमती रश्मि सक्सैना ने बताया कि अभी प्रातः मुझे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज (प्रभु जी) के दर्शन हुए और वह आयोजन स्थल के बाहर कम्बल ओढ़े खड़े हैं व आदेश दे रहे हैं कि 'यह स्थान बन्द क्यों है? इसे तुरन्त खोल दो,' जैसे ही श्री सद्गुरुदेव भगवान जी का यह दिव्य आदेश रूपी लीला हमें पता चली उसके थोड़ी देर बाद ही हमारे पास परम आचार्य श्री दासलाल जी महाराज का फोन आ गया कि वह पधार रहे हैं। इसके बाद फिर तो योग अभ्यास आश्रम कनखल से सूचना आई कि वहाँ के आचार्य जी भी पधार रहे हैं तथा चाँदपुर से आचार्य श्री ईश्वर चन्द जी आदि वक्तागण पधार रहे हैं। इतने वक्तागण के उपस्थित हो जाने पर तो योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रभु जी का जन्म शताब्दी समारोह जैसा हमने चाहा था, बिल्कुल वैसा ही होता चला गया। अत्यन्त शान्तिपूर्ण माहौल में विशाल योग सम्मेलन निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हुआ, जो श्री सद्गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज (प्रभुजी) की महती कृपा से ही सम्भव हो सका। श्री प्रभु जी के दिव्य रूप से पधारते ही सारे कार्यक्रम की दिशा ही बदल गयी। कार्यक्रम में जो विकृति आ गयी थी। वह सब स्वतः ही श्री प्रभु जी की कृपा मात्र से ठीक हो गयी।

ऐसे परिपूर्ण श्री सद्गुरुदेव जी की शरणागति पा लेने के बाद जबकि हमारा प्रत्येक छोटे से छोटा कार्य एवं बड़े से बड़ा कार्य उनकी (श्री प्रभुजी की) महती कृपा से ही सम्भव होता है। हर बार हम यह कहते हुए मिल जायेंगे कि 'हे प्रभु जी हमारा यह कार्य नहीं हो रहा है। आपकी कृपा से हो जाय। हे गुरुजी हमें अमुक वस्तु की आवश्यकता है देने की कृपा करें आदि–आदि। उनकी दयालुता देखिये कि वह हर किसी को मनोवांछित वस्तु प्रदान करते रहते हैं।' देखने में कहीं मिलेगा ऐसा दाता, परंतु हम स्वार्थी मनुष्य जरा सी देर में सब भूल जाते हैं जरा सी कहीं चमक दिखाई दी नहीं कि वहीं पहुँच जाते हैं अपनी 'बिकाऊ भक्ति के

बासी फूल लेकर। श्री गुरु कृपा से धन्य गुरुभाई बहनों हमारे श्री सद्गुरुदेव भगवान गली–गली घूमने वाले अशक्त और केवल नाम के गुरु नहीं हैं। वे तो सर्वशक्ति से विभूषित इहलौकिक एवं पारलौकिक सकल ऐश्वर्य को एक ही कृपा दृष्टि मात्र से ही प्रदान करने की सामर्थ्य वाले परम पिता परमेश्वर हैं। इनकी आज्ञा का पालन ही इनकी प्राप्ति की कुँजी है, इनको प्राप्त करने के पश्चात् अब किसी अवतार या भगवद्पुरुष या संतपुरुष का चिन्तन करते हैं तो वह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं क्योंकि जो परब्रह्म महाशक्ति हमारे श्री सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं दादा गुरुदेव योग–योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के रूप में परिपूर्ण रूप से अनन्त कलाओं से सुशोभित होकर प्रादुर्भूत है। हमारे–आपके श्री गुरुदेव भगवान के लिए ही तो भगवान श्री शिव शंकर ने जगत जननी माँ पार्वती से कहा है :–

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्तापहारकम्।।

सत्यं–सत्यं पुनः सत्यम धर्मशास्त्र मयोदितम्।
गुरु गीता समं नास्ति, नास्ति तत्वं गुरो परम्।।

इससे अपर अन्य गुरुओं के लिए शास्त्र का कथन है:–

गुरुलोभी शिष लालची, दोनों खेले दाँव।
दोनों डूबे साथ में, बैठ पाथर की नाँव।।

गुरु अंध शिष बधिर का लेखा, एक न सुनइ एक नहीं देखा।
हरइ शिष्य धन सोक न हरई, सो गुरु घोर नरक मह परई।।

ऐसे गुरुओं के लिए सिद्धसिद्धान्त संग्रह का आदेश है कि :–

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विकल्पकः।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम्।।

चैतन्य चरितावली का एक प्रसंग

दिशाहीन नारियों का उद्धार

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

(विभूति–सम्पन्न महापुरुषों की वाणी मात्र से सद्मार्ग से हटकर और भ्रष्ट–मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति किस प्रकार अपना दिशा–बोध प्राप्त कर लेते हैं। महाप्रभु चैतन्य के चारु–चरित्र का यह कथा–प्रसंग पाठकों को हितकर होगा। इस दृष्टि से यह प्रसंग हम यहाँ दे रहे हैं। इसके लेखक हैं परम भागवत भक्त और आज के युग के महासन्त तथा हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी।

–सं. सम्पादक)

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारितैः,
रेरेकोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं,
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते।।

(भर्तृ. वै. श. 98)

जो कामदेव! धनुष्य टङ्कारों से तू अपने हाथों को क्यों कष्ट दे रहा है? अरी कोयल! तू भी अपने कोमल कलनादों से क्यों व्यर्थ कोलाहल मचा रही है? ऐ भोली भाली रमणी! तुम्हारे इन स्नेहयुक्त, चतुर, मोहन, मधुर एवं चंचल कटाक्षों से भी अब कुछ नहीं हो सकता। मेरे चित्त ने तो चन्द्रचूड के चरणों का ध्यानरूपी अमृत–पान कर लिया है।

जिसने प्रेमासव का पान कर लिया है, जो उसकी मस्ती में संसार के सभी पदार्थों को भूला हुआ है, उसके सामने ये संसार के सभी सुन्दर, सुखद और चमकीले पदार्थ तुच्छ हैं। वह उन पदार्थों की ओर दृष्टि तक नहीं डालता, जिनके लिए विषयी मनुष्य अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तत्पर रहते हैं। जिस हृदय में कामादि के भी पूजनीय प्रभु निवास करते हैं, उस हृदय में काम के लिए स्थान कहाँ? क्या रवि और रजनी एक स्थान पर रह सकते हैं? दीपक लेकर यदि आप अन्धकार को खोजने चलें तो उसका पता कहीं मिल सकता है? इसीलिए कहा है– 'जहाँ है काम, वहाँ राम नहीं। और जहाँ राम हैं, वहाँ काम नहीं।'

जो जाड़े से ठिठुरा हो उसके सम्मुख उसकी इच्छा के विरुद्ध भी धधकती हुई अग्नि पहुँच जाय तो उद्योग न करने पर भी उसका जाड़ा छूट जायेगा। सांभर की झील में कंकड़ी, पत्थर, हड्डी जो भी वस्तु गिर जायेगी वह नमक बन जायेगी। प्रेमी से चाहे प्रेम से सम्बन्ध करो या ईर्ष्या–द्वेष से, कल्याण आपका अवश्य ही होगा। भूल से भी, लोहा पारस से छुआ दिया जाय तो उसके सुवर्ण होने में कोई सन्देह नहीं।

महाप्रभु जब दक्षिण के समस्त तीर्थों में भ्रमण करते–करते श्रीरङ्गम् आ रहे थे, तब रास्ते में अक्षयवट नामक तीर्थ में ठहरे। रास्ते में महाप्रभु का जीवन–निर्वाह भिक्षा पर ही होता था। किसी दिन भिक्षा मिल जाती थी, किसी दिन नहीं भी मिलती थी। कृष्णदास भट्टाचार्य प्रभु को भिक्षा बनाकर खिलाते थे। एक दिन भिक्षा का कहीं संयोग ही न लगा। तीर्थ में उपोषण का भी विधान है, अतः उस दिन महाप्रभु ने कुछ भी नहीं लिया। एक निर्जन स्थान में शिवजी के समीप वे कीर्तनान्द में मग्न हुए–

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्।।

इस महामन्त्र को जोर–जोर से उच्चारण कर रहे थे। रास्ते के श्रम से उनके श्रीमुख पर कुछ श्रमजन्य थकावट के चिन्ह प्रतीत होते थे। उनके समस्त अङ्गों से एक प्रकार का तेज सा निकल रहा था। वे प्रेमानन्द में मग्न हुए उच्च स्वर से नाम संकीर्तन में मग्न थे। इतने में ही तीर्थराम नाम का एक बहुत बड़ा धनी वहाँ सहसा आ पहुँचा। उसे अपने धन का गर्व था, युवावस्थान से उसे कर्त्तव्य–शून्य बना दिया था। यौवन के मद में वह अपने धर्म को तिलांजलि दे चुका था। खाना पीना और मौज उड़ाना यही उसने अपने जीवन का ध्येय बना रखा था। सुन्दर से सुन्दर भोज्य पदार्थों को खाना और मनोरम से मनोरम ललनाओं के साथ समय बिताना यही उसने जीवन का परम सुख समझ लिया था। उसके साथ दो अत्यन्त सुन्दरी वेश्यायें थीं। उनमें से एक का नाम सत्याबाई और दूसरी का नाम लक्ष्मीबाई था। उनके साथ हास–परिहास करते–करते वह शिवालय के समीप आ पहुँचा। वहाँ उसने अपनी कान्ति से दिशाओं को आलोकित करते हुए प्रेमावतार श्रीचैतन्य को देखा। सुवर्ण के समान शरीर का रंग था, कमल के समान विकसित मुखारविन्द पर हठात् चित्त को अपनी ओर आकर्षित करने वाली दो बड़ी–बड़ी आँखें थीं। उसकी समझ में ही नहीं आया कि इतनी अतुलनीय रूप–राशि से युक्त यह पुरुष यहाँ जंगल में अकेला एक कपड़ा ओढ़े क्यों पड़ा है? अपने सन्देह को मिटाने के लिए उसने धीरे से कहा– 'कौन है।'

किंतु महाप्रभु तो अपने कीर्तनानन्द में मग्न थे, उन्हें किसी का क्या पता। वे पूर्ववत जोरों से कीर्तन करते रहे। उनकी उत्सुकता और भी बढ़ी। उसने अबके जरा जोर से कहा – 'आप कौन हैं और यहाँ एकान्त में क्यों पड़े हैं?'

कृपामय श्रीचैतन्य ने अबके उसकी बात का उत्तर दिया– 'भाई! हम गृह–त्यागी सन्यासी हैं, अपने प्यारे की तलाश में घर से निकले हैं। एकान्त ही हमारा आश्रय है, वैराग्य ही हमारा बंधु है, संकीर्तन ही हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है। इसीलिए हम यहाँ एकान्त में पड़े अपने

प्यारे के नामों का उच्चारण कर रहे हैं।' इतना कहकर महाप्रभु फिर पूर्ववत् कीर्तन करने लगे।

इस उत्तर को पाकर तीर्थराम को संतुष्ट हो जाना चाहिए था और महाप्रभु को छोड़ कर वेश्याओं के साथ अन्यत्र चले जाना चाहिए था। किंतु उसका तो प्रभु के द्वारा उद्धार होना था। उसके मन मे ईर्ष्या का अंकुर उत्पन्न हुआ, वह सोचने लगा – 'यह भी कोई अजीब आदमी है। विधाता ने इसे इतना सौंदर्य दिया है, चढ़ती जवानी है, किसी उच्च कुल का प्रतीत होता है, फिर भी ऐसी वैराग्य की बातें कर रहा है। मालूम होता है इसे सत्याबाई और लक्ष्मीबाई के समान रूपलावण्ययुक्त कोई ललना नहीं मिली है। यदि एक बार भी इसने ऐसी अनुपम सुन्दरी के दर्शन किये होते तो यह संन्यास और वैराग्य सभी को भूल जाता।'

इन बातों को सोचते–सोचते वह अपनी दोनों संगिनियों से बोला– 'मालूम होता है, इसने अभी संसार का सुख नहीं भोगा है, तभी यह ऐसी बढ़–बढ़कर बातें करता है।'

एक साथ ही दोनों जल्दी से बोल उठीं–'अजी, चलो भी किसकी बातें करने लगे। ये सब कामदेव दण्डित व्यक्ति हैं। यहाँ इन्होंने ललनाओं के रूप की निन्दा की, वहीं कामदेव ने खप्पर हाथ में देकर इन्हें द्वार–द्वार पर भिखारी बना दिया।'

तीर्थराम ने कहा – 'नहीं, ऐसी बात नहीं। इसके चेहरे में आकर्षण है। कोई वैराग्यवान् साधू मालूम पड़ता है।'

इस पर उसकी बात का प्रतिवाद करती हुई लक्ष्मीबाई बोली– 'हाँ, बिना मिलेके तो सभी त्यागी–वैरागी हैं। खाने को न मिला तो कह दिया कि एकादशी व्रत है। 'नारि मुई घर सम्पत्ति नासी। मूँड़ मुड़ाइ भये संन्यासी।' मुझ–जैसी कोई इनके पल्ले पड़ जाय, तब हम देखेंगे कि कैसे त्यागी बने रहते हैं?'

तीर्थराम ने उन दोनों को उत्तेजना देते हुए कहा– 'अच्छा, देखें तुम्हारी बात। यदि इसे अपने चंगुल में फँसा लो तो जो चाहो वह इनाम तुम्हें दें।'

उन दोनों को अपने रूप–लावण्य का गर्व था। वे मत्त सिंहनी की भाँति महाप्रभुजी की ओर चलीं। तीर्थराम पास ही छिपकर उनकी सब बातों को देखता रहा।

महाप्रभु एक करवट से लेटे हुए श्रीकृष्णकीर्तन कर रहे थे। गोविन्द और कृष्णदास कुछ दूरी पर थे। वे वेश्यायें वहाँ जाकर बैठ गयीं और अपने हाव–भाव–कटाक्षों से प्रभु की अनन्यता को भंग करने की चेष्टा करने लगीं, किंतु प्रभु को पता भी नहीं कि कौन आया है, वे अपने नशे में चूर थे, उन्हें दीन–दुनिया किसी का भी होश नहीं था। उन्हें वहाँ बैठे जब बहुत देर हो गई तब लक्ष्मीबाई ने सम्पूर्ण साहस को इकट्ठा करके कहा – 'साधुबाबा! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ।'

(शेष अगले अंक में)

महान कर्मयोगी
देवाधिदेव महादेव

देवासुरों द्वारा समुद्र मंथन के समय हलाहल विष निकला। प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि उस उल्बण (अत्यन्त उग्र) गरल का पान कौन करे? सारे संसार में कोलाहल मच गया। पशु, पक्षी, मनुष्य घबराने लगे। सभी आशुतोष औढरदानी देवाधिदेव महादेव की शरण में गये। भगवान् विष्णु ने भी हँसते हुए कहा– 'घर में आई कमाई की पहली वस्तु बड़े पुरुष की होती है। अतः यह आपका ही भाग हुआ, आप ही इसे ग्रहण करें।'

भगवान भोलेनाथ शंकरजी परम दयालु ठहरे। उनकी दयालुता और भक्तवत्सलता का वर्णन हमारे जैसे अज्ञानियों के लिए दुष्कर है। भगवान विष्णु के कथन पर वे भी हँस पड़े। दया की साक्षात् मूर्ति ने पराम्बा पार्वती से कहा – देवि! देखो, आज प्रजा पर कैसा भीषण संकट पड़ गया है। इस कालकूट की ज्वाला से दिशाओं में प्रचण्ड अग्नि धधक रही है, जीवों के प्राण-पखेरू निकलना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में यदि मैं इनकी रक्षा न करूं, इन्हें उस आपत्ति से न बचाऊँ तो मेरी शक्ति का, मेरे ऐश्वर्य का क्या उपयोग हो सकता है? उसी शक्तिमान् की शक्ति प्रशंसनीय है जिसका उपयोग दीनदुखियों की रक्षा और पालन-पोषण में होता है। बड़ा भारी महाज्ञानी हो, बड़ा भारी भक्त हो और बड़ा भारी कर्मयोगी भी हो परन्तु यदि वह दीनों की उपेक्षा करता है, उनकी रक्षा नहीं करता तो उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है, उसकी भक्ति विफल हो जाती है और कर्मयोग अपूर्ण रह जाता है।'

ऐसा कहकर और विष्णु भगवान की बात को भी ध्यान में रखते हुए भगवान शंकर ने उस विष का, अमृत के समान मानते हुए, एक ही घूँट में पान कर लिया।

उस विष के प्रभाव से शंकर का कण्ठ नीला पड़ गया, मानो जगत के कल्याण के लिए किये गये उस महान कर्म की साक्षिता देने के लिए वह उनके गले का आभूषण बन गया – 'तच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्' उनका नाम नीलकण्ठ हो गया। महापुरुषों की यही रहनी है, उनका सहज स्वभाव है कि अपने लिए कोई कर्तव्य अभीष्ट न रहने पर भी – कोई राग, संताप न रहने पर भी – लोगों के परोपकार के लिए वे कर्म में लगे रहते हैं और कष्ट सहन किया करते हैं, क्योंकि भगवान की यह सबसे बड़ी आराधना है।

देवासुर संग्राम अनादि काल से होता चला आ रहा है, सत्व, रज और तमोगुण की प्रधानता को लेकर संसार में सर्वत्र नित्यप्रति छोटे-बड़े- विवाद होते ही रहते हैं। उन कलह रूपी तापों को मिटाने के लिए जो सत्पुरुष विष का घूँट पीकर रह जाते हैं, वे मानो भगवान नीलकण्ठ के रूप में निष्काम कर्मयोग की ही शिक्षा देते हैं।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना–

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आवंटन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पोंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/–प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु० 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा